योगविद्या

वर्ष 7 अंक 8
अगस्त 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : गंगा दर्शन सत्संग

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: स्वामी शिवानन्द सरस्वती;
2: स्वामी सत्यानन्द सरस्वती;
3: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती;
4: यौगिक अध्ययन (हिंदी) 2018

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

स्वाध्याय के लाभ

शास्त्रों तथा मंत्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा लिखित ग्रन्थों का नित्य अध्ययन ही स्वाध्याय है। 'मैं कौन हूँ' अथवा आत्मतत्त्व का विचार भी स्वाध्याय ही है। स्वाध्याय एक प्रकार से अप्रत्यक्ष सत्संग है। रामायण, भागवत, योगवासिष्ठ, गीता, विवेकचूडामणि आदि स्वाध्याय के लिए उत्तम ग्रन्थ हैं।

स्वाध्याय हमारे मन को प्रेरणा देता है और आध्यात्मिकता के उच्च शिखर तक पहुँचा देता है। यह शंकाओं का समाधान करता, अपवित्र विचारों का मूलोच्छेदन करता तथा मन में नई आध्यात्मिक धारा प्रवाहित करता है। इससे मन का विक्षेप दूर होता है, एकाग्रता में सहायता मिलती है और सविकल्प समाधि के प्राथमिक स्तर का निर्माण होता है। धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करते समय आप उन ग्रन्थों के प्रणेता सिद्ध महापुरुषों के सम्पर्क में आते हैं और उनसे प्रेरित होकर तन्मयता प्राप्त करते हैं।

—श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 8 • अगस्त 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 विषाद से ऊपर उठो
8 एक राम सबसे न्यारा
14 योग द्वारा अध्ययन क्षमता में वृद्धि
20 आश्रम जीवन की सार्थकता
24 बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक निर्देश
26 विषाद का यौगिक निदान
35 शिव पुराण में नवधा भक्ति का स्वरूप
44 सत्यम् वाणी
50 आसन से प्रत्याहार तक
53 देवत्व की ओर

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

विषाद से ऊपर उठो

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

श्रीमद् भगवद्गीता में कहा गया है–'दु:ख के संयोग से रहित होना ही योग है। इस योग का अभ्यास धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना चाहिए।'

तं विद्याद् दु:खसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥6.23॥

कायर व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के सर्वथा अयोग्य है। वह अपनी मृत्यु के पूर्व अनेक बार मरता है। इसलिए हाड़-मांस से बने हुए इस नश्वर शरीर से आसक्त न होइए। किसी भी क्षण अपने शरीर के त्याग हेतु स्वयं को तैयार रखिए। इसे कहीं पर भी वैसे ही त्याग दीजिए जैसे एक साँप अपनी केंचुली को उतार फेंकता है। पूर्णतया निर्भय बनिए। जब तक शरीर से तनिक भी आसक्ति रहेगी, आप आत्म-साक्षात्कार की कल्पना भी नहीं कर सकते। 'करो या मरो' का दृढ़ संकल्प लीजिए तथा निर्भीक एवं उत्साही बनिए।

विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत न हारिए। मुस्कुराते हुए सभी कष्टों और कठिनाइयों का सामना कीजिए। सच्चे सेनानी बनिए। मन, इन्द्रियाँ, इच्छाएँ, संस्कार एवं वासनाएँ आपके आन्तरिक शत्रु हैं। इनसे युद्ध कीजिए। इन्होंने आपकी आत्मा रूपी मणि का हरण कर लिया है। आध्यात्मिक युद्धभूमि का योद्धा बनिए। सांसारिक समरक्षेत्र की तुलना में आध्यात्मिक युद्धभूमि में कहीं अधिक सामर्थ्य, साहस, कौशल, धैर्य, बल एवं दृढ़ता की आवश्यकता होती है। सिंह के समान साहसी और शक्तिशाली बनिए। जीवन में प्रलोभन बिना कोई पूर्वसूचना दिए अकस्मात् ही प्रकट होंगे और आप आश्चर्यचकित रह जाएँगे। उनका सामना करने के लिए आपके पास तनिक भी समय नहीं रहेगा। इसलिए सदैव सावधान रहिए।

जब दैनिक जीवन में दु:खों, कठिनाइयों एवं संकटों से सामना हो तब हतोत्साह न हों। अपने भाग्य के विधाता आप स्वयं हैं। आप दिव्य हैं, दिव्य आदर्श के अनुरूप अपने आपको ढालिए। अपनी दिव्य प्रकृति का अनुभव कीजिए, उसे प्राप्त कीजिए। अपनी आन्तरिक आध्यात्मिक शक्ति एवं साहस को प्रकट कीजिए। आपके अन्दर सामर्थ्य एवं ज्ञान का एक विशाल, अक्षय स्रोत छिपा हुआ है। अपनी आन्तरिक गहराई में डुबकी लगाइए और उस स्रोत को खोज निकालिए। अमरता की पवित्र धारा में, अन्दर की पावन त्रिवेणी में कूद जाइए, उसमें गोता लगाइए। आप जीवन में ताजगी, स्फूर्ति एवं शक्ति के संचार का अनुभव करेंगे।

सृष्टि के नियमों को समझिए। सांसारिक क्रिया-कलापों में व्यवहारकुशल बनिए। प्रकृति के रहस्यों को जानिए। मनोनियंत्रण की सर्वोत्तम विधियों को जानने का प्रयास कीजिए। अपने मन पर विजय प्राप्त कीजिए। मन पर विजय वास्तव में इस संसार और प्रकृति पर विजय है।

जीवन में दु:ख-तकलीफ से सामना होने पर न तो बड़बड़ाएँ और न ही शिकायत करें। कठिन परिस्थितियों में आपके धैर्य एवं संकल्प-शक्ति में वृद्धि होती है और आपका मन ईश्वर की ओर अभिमुख होता है। मुस्कुराते हुए उन कठिनाइयों का सामना कीजिए। आपकी कमजोरियों में ही आपका वास्तविक सामर्थ्य छिपा हुआ है। आप अजेय हैं। कोई आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। एक-एक कर अपनी समस्याओं पर विजय प्राप्त कीजिए। अपनी आकांक्षाएँ ऊँची रखिए तथा उन्हें प्राप्त कीजिए। आपके अन्दर साहस,

सहनशीलता और धैर्य जैसे श्रेष्ठ सात्त्विक गुण प्रसुप्त अवस्था में पड़े हुए हैं। उन्हें जागृत करें और एक नए आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ करें, जो अत्यंत व्यापक, महिमामय तथा दिव्य ऐश्वर्यों से युक्त रहे।

जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण अपनाएँ। स्वयं को प्रसन्नता, बुद्धि, विवेक एवं निर्भीक मनोभावों से युक्त करें। एक महिमामय, देदीप्यमान् भविष्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। अपने भूत को भूल जाइए। आप चमत्कारपूर्ण एवं आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। निराश न हों। आप अपनी दृढ़ संकल्प-शक्ति के बल पर प्रतिकूल ग्रहों के हानिकारक प्रभावों को भी नष्ट कर सकते हैं। आप प्रकृति और उसके सभी तत्त्वों को नियंत्रित कर सकते हैं। आप प्रतिकूल परिस्थितियों को सर्वोत्तम सम्भावनाओं में बदल सकते हैं। आप भाग्य की लकीर को भी मिटा सकते हैं। अनेक लोगों ने ऐसा किया है, आप भी ऐसा कर सकते हैं। दृढ़ निश्चयी बनें। अपने दिव्य लक्ष्य को पहचानें, उसके दावेदार बनें और उसे प्राप्त करें। यह आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। आप अजर, अमर आत्मा जो हैं।

आत्मसाक्षात्कार हेतु दृढ़ निश्चय एवं स्वावलम्बन अति आवश्यक है। मुण्डक उपनिषद् में कहा गया है कि सामर्थ्यहीन व्यक्ति आत्मानुभव प्राप्त नहीं कर सकता– *नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः*। निर्भयता जिज्ञासु का एक मुख्य गुण है। व्यक्ति को किसी भी क्षण अपने इस जीवन के परित्याग हेतु तैयार रहना चाहिए। वासनात्मक जीवन का त्याग किए बिना शाश्वत आध्यात्मिक जीवन प्राप्त नहीं किया जा सकता। गीता में जिन दिव्य गुणों की चर्चा की गई है उनमें निर्भयता का प्रथम स्थान है। एक डरपोक आदमी अपनी वास्तविक मृत्यु के पूर्व भी अनेक बार मरता है। आध्यात्मिक मार्ग में आने वाली प्रत्येक कठिनाई अधिकाधिक सबल होने और आपकी संकल्पशक्ति को दृढ़तर बनाने का सुअवसर प्रदान करती है। यदि आपने आध्यात्मिक मार्ग पर चलने का संकल्प लिया है तो हर परिस्थिति में उस पर आरूढ़ रहें, चाहे इस हेतु अपने जीवन को ही खतरे में क्यों न डालना पड़े। साहसी एवं धैर्यवान् बनें तथा अपने लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्ध रहें। सत्य का साक्षात्कार करें, उसका सर्वत्र उद्घोष करें।

आप स्वयं ही अपने भाग्य के निर्माता हैं। आपने अपने ही विचारों एवं कर्मों से उसकी रचना की है। आप सद्विचार एवं सत्कर्म द्वारा उसे मिटा सकते हैं। यदि आप पर किसी नकारात्मक शक्ति का हमला हो तो आप दृढ़तापूर्वक उसके अस्तित्व को नकारते हुए, अपने मन को उससे विलग करके उसके प्रभाव को कम कर सकते हैं। इस प्रकार आप अपने भाग्य को निष्क्रिय बना सकते हैं। मात्र यही एक विचार कि 'मैं अमर आत्मा हूँ', सभी बुरी शक्तियों एवं प्रतिकूल ग्रहों के प्रभावों को निष्क्रिय बना देगा तथा आपको साहस एवं आध्यात्मिक शक्ति से अनुप्राणित कर देगा।

समस्त मानवीय दु:खों का मूल कारण गलत चिन्तन प्रक्रिया है। अपने अन्दर सद्विचार उत्पन्न कीजिए, स्वयं को सत्कर्म में लगाइए। सोचिए कि आप अमर आत्मा हैं। यह सही चिन्तन है। आप एकता की दृष्टि तथा नि:स्वार्थता के भाव से कार्य करें। आपकी भावना यह रहे कि मैं सर्वव्यापी ईश्वर की सेवा कर रहा हूँ और मेरे समस्त कार्य उसकी पूजा हैं। यही सत्कर्म है।

पाप नाम की कोई चीज नहीं होती। हमारी भूल का ही दूसरा नाम पाप है। यह एक मानसिक संरचना मात्र है। अपने विकास क्रम में आत्मा से कुछ-न-कुछ गलतियाँ होती ही हैं। अपनी गलतियों को आप अपना सर्वोत्तम शिक्षक मानिए। अपने आप को शुद्ध आत्मतत्त्व के रूप में पहचानिए, तब पाप के विचार की स्वत: धज्जियाँ उड़ जाएँगी।

कर्म की रट मत लगाइए, यह नहीं कहिए कि मेरे कर्म ने मुझे इस अवस्था में पहुँचा दिया है। कठोर श्रम, तप, एकाग्रता एवं ध्यान कीजिए तथा स्वयं को शुद्ध बनाइए। भाग्यवादी मत बनिए। जड़ता का शिकार मत होइये। मेमने की तरह मिमियाना ठीक नहीं है। वेदान्त केसरी की तरह दहाड़िए–'ॐ ॐ ॐ'। आप जानते हैं कि ऋषि मार्कण्डेय, जिन्हें मात्र सोलह वर्ष की आयु प्राप्त थी, अपने तपोबल से चिरंजीवी बन गए। सावित्री ने अपनी तपोशक्ति से अपने मृत पति को जीवित कर दिया। इसी प्रकार अमेरिका के बेंजामिन फ्रैंकलिन एवं मद्रास हाइकोर्ट के सर टी. मुथुस्वामी अय्यर ने साधना द्वारा उच्च आध्यात्मिक अवस्था प्राप्त की।

मेरे मित्रों! सदैव याद रखें कि व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का स्वामी है। ऋषि विश्वामित्र, जो एक क्षत्रिय राजा थे, महर्षि वशिष्ठ के समान ब्रह्मर्षि बन गए। उन्होंने त्रिशंकु के लिए तीसरे लोक का निर्माण तक कर दिया। बंगाल के जगाई एवं मधाई जैसे निकृष्ट दुर्जन गौरांग प्रभु के शिष्य बनकर महान् सन्त हो गए। जैसा महान् कार्य अन्य लोगों ने किया है, आप भी वैसा कर सकते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि आप आध्यात्मिक साधना, तप एवं ध्यान में लग जाएँ तो आप भी आश्चर्यजनक एवं चमत्कारपूर्ण कार्य कर सकते हैं।

अपने जीवन के लिए एक कार्यक्रम बनाइए। मेरे 'बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक अनुदेशों' एवं 'चालीस स्वर्णिम निर्देशों' का अनुकरण कीजिए। मेरी पुस्तक 'योग एवं वेदान्त का अभ्यास' का अध्ययन कीजिए। अपने दैनिक आध्यात्मिक कार्यक्रम, साधना एवं योगाभ्यासों को नियमित एवं क्रमबद्ध रूप से तथा उमंग एवं उत्साह के साथ सम्पादित कीजिए। आप अमरता और प्रकाश की संतान हैं। आप अपने स्वाभाविक दिव्य ऐश्वर्य से देदीप्यमान् हों। यदि दिव्य सत्ता में आपकी पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास है तो आप अवश्य ही सफल होंगे। प्रिय बन्धु, निराश मत होना– *तत् त्वम् असि*, तुम वही हो।

एक राम सबसे न्यारा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

भारत के लोगों के लिए रामायण और राम, ये दो शब्द ऐसे हैं जिनके बारे में मुझे कुछ विशेष कहने की जरूरत नहीं है। हर मनुष्य के मुख से सुख या दु:ख में बिना प्रयास के 'राम-राम' अपने आप निकल जाता है। किन्तु इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए कि रामायण का रहस्य क्या है? क्या राम एक सामान्य व्यक्ति थे या राजपुत्र थे अथवा परब्रह्म परमेश्वर थे? उनका वास्तविक स्वरूप क्या था? संत कबीर ने कहा है–

एक राम दशरथ का बेटा, एक राम सब घट में बैठा।
एक राम ने जगत पसारा, एक राम सबसे न्यारा॥

इनमें से मुझे दशरथ पुत्र राम के बारे में कुछ नहीं कहना है, वह सारी दुनिया जानती है। मगर घट में बैठने वाला राम और इस सृष्टि के मूल में बीज की तरह रहने वाला राम, जो महात्माओं और ऋषि-मुनियों की समाधि से भी परे है, वह कौन है?

जब तक कोई व्यक्ति संस्कृति और घट-घट में बैठे राम के अन्वेषण का आधार लेकर नहीं चलता, तब तक वह बाह्य आवरण से ढँका रहता है और उसकी सांस्कृतिक उन्नति नहीं होती, समाज का उत्थान संभव नहीं होता। आज हमारे समाज की स्थिति ऐसी क्यों है? हम इतने महान् होते हुए भी क्यों गिर रहे हैं? विश्व का इतिहास देख लीजिए। जितने ज्ञानी, महात्मा, परमहंस, ऋषि, मुनि तथा तत्त्ववेत्ता इस धरती पर पैदा हुए हैं, उतने और कहीं भी नहीं हुये। हिमालय और कन्याकुमारी के बीच स्थित इस देश में महान् विभूतियों ने जन्म लिया है। इतनी ज्यादा शक्ति होने के बावजूद भी आज इस देश की ऐसी स्थिति क्यों है? इसका मूल कारण ढूँढने से पता चलता है कि आज इस देश के मानव घट-घट व्यापी उस राम को जानने के लिए न तो उत्सुक हैं और न कोई उपाय ढूँढते हैं।

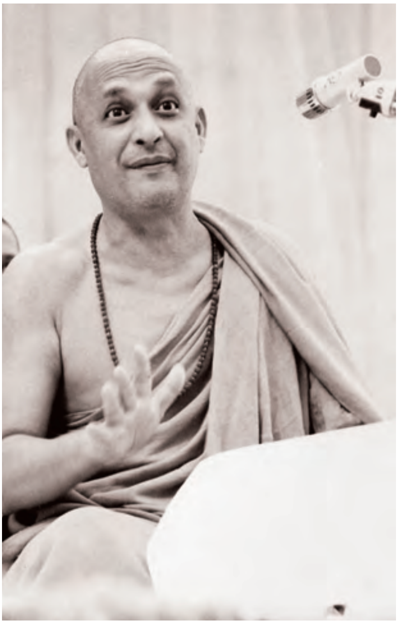

आज हमलोगों का मन बहुत चंचल है और इसीलिए विचार शक्ति भी दृढ़ नहीं है। मैं केवल बड़े या छोटे, अमीर या गरीब, ऊँचे या नीचे कुल वाले लोगों की बात नहीं कहता, केवल स्त्रियों और बूढ़ी माताओं की ही बात नहीं कहता, बल्कि छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े व्यक्ति तक को देखने से मुझे ऐसा लगता है कि हर व्यक्ति के दिमाग में रावण बैठा है। अभी रावण मरा ही कहाँ है? ध्यान के समय, पूजा के समय और जब स्कूल तथा ऑफिस जाते हो तब भी वही रावण तुम्हारे मस्तिष्क में नाचता है। यह रावण दस सिर और बीस हाथ वाला आदमी नहीं, बल्कि मनुष्य के अंदर छिपी हुई तमोगुणी और रजोगुणी वृत्ति है। मन में जो अनेक दुर्विचार आते हैं, छोटी-छोटी बातों को लेकर जो अशान्ति होती है, यही रावण है जो हमारे व्यक्तित्व का एक अंग बन गया है। इस रावण को पराजित करने के लिए अपने व्यक्तित्व पर विजय प्राप्त करनी होगी।

हमारा मन ही हमारे व्यक्तित्व की आधारशिला है। क्रोध, चोरी इत्यादि दुर्गुणों ने हमारे अच्छे गुणों को समाप्त कर दिया है, छिपा दिया है। जिस तरह से रावण ने सीता को पंचवटी से हर कर लंका की अशोक वाटिका में रखा, उसी प्रकार इन दुर्गुणों ने हमारे अंदर की सच्चरित्रता का हरण कर लिया है। हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही पंचवटी का प्रतीक है। शान्ति रूपी सीता इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के बीच रहती है जिसे मन रूपी रावण हरण करके ले जाता है। शान्ति ही मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आज तुम्हारी सीता कहाँ है? अपने से पूछो। जब तक हम अपने अंदर के रावण को नहीं मार सकेंगे, तब तक सीता वापस नहीं आ सकती। अपने अंदर स्थित रावण का संहार करना ही मनुष्य की अपने व्यक्तित्व पर सबसे बड़ी विजय है।

रावण बहुत प्रतापी था। उसके दस सिर और बीस हाथ माने जाते हैं। ये दस सिर मनुष्य की दस इन्द्रियों के और बीस हाथ दस इन्द्रियों के शुभाशुभ आचरण के प्रतीक माने जाते हैं। रावण सोने की नगरी, लंका में रहता था। हमारा शरीर प्रतीकात्मक दृष्टि से मूल्यवान् सोने की नगरी है। कथा के अनुसार लंका को हनुमान जी जलाते हैं। हनुमान जी कुण्डलिनी शक्ति की जाग्रत अवस्था के प्रतीक हैं। इसके द्वारा अपने अंदर की सभी नस-नाड़ियों को नियंत्रित कर लिया जाता है। हनुमान जी के द्वारा लंका जलाने का वास्तविक अर्थ क्या है, इसे बहुत कम लोग जानते हैं।

जब योग साधक यौगिक क्रियाओं को करता है, उस समय उसके रीढ़ की हड्डी के सबसे नीचे भाग में मूलाधार चक्र पर आग लगती है। आग का मतलब तेज है। रीढ़ की हड्डी के सबसे ऊपर के हिस्से में अंतिम चक्र जो भ्रूमध्य के ठीक पीछे होता है, उसे आज्ञा चक्र कहते हैं। मूलाधार चक्र में भगवती कुण्डलिनी चिरनिद्रा में सोई रहती है। जिस प्रकार दूध में मक्खन, तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि और यूरेनियम में अणुशक्ति छिपी रहती है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के अंदर यह

शक्ति छिपी पड़ी है। इसे जागृत करने के लिए साधना करनी पड़ती है। वह साधना क्या है? तुम पूरी राम कथा पढ़ लो, वह किसी व्यक्ति या राजनेता की कथा नहीं है, वह तो एक साधक की कथा है। साधक किस प्रकार से साधना करता है, वह किस प्रकार शक्ति का अशोक वाटिका से पुनः उद्धार करके वापस ले आता है इसका स्पष्ट उदाहरण रामचरितमानस है। इसे अच्छी तरह समझने का प्रयत्न करो।

हमारे यहाँ अनादिकाल से लेकर आज तक ऋषि-मुनि और महात्मागण केवल एक बात पर जोर देते आ रहे हैं, कि तुम शरीर या मन नहीं बल्कि शरीर के अंदर रहने वाले मन को जानने वाले हो। मान लो यदि मैं शरीर, इन्द्रिय या मन नहीं हूँ, तो कौन हूँ? यदि कहूँ कि मैं स्वामी सत्यानन्द हूँ, तो यह शरीर का नाम है। शरीर को माँ-बाप ने और नाम को किसी पंडित ने दिया। यह सब मैं कैसे हो सकता हूँ? केवल महात्मा और ज्ञानी लोग 'मैं कौन हूँ' यह जानते हैं। जैसे बीज में वृक्ष छिपा रहता है, वैसे ही इस मनुष्य शरीर के अंदर शक्ति छिपी रहती है। उस शक्ति को जागृत करके तुम समर्थ बन सकते हो, और तब तुम किसी के पास याचक बनकर नहीं जाओगे, किसी के पास हाथ नहीं फैलाओगे, क्योंकि तुम समर्थ हो। यह विद्या यदि किसी निर्धन या रोगी को मिल जाए तो समर्थ बनेगा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जिस किसी को मिल जाए वह समर्थ बनेगा। समर्थ का मतलब होता है वह व्यक्ति जीवन में किसी भी काम को कर सकता है। अब यह सामर्थ्य हमारे देश में कैसे आएगा? यह तो वीरों का, महात्माओं का, बुद्ध का, रामकृष्ण का, संत कबीर का देश है। साधना से शक्ति आती है, बिना साधना के शक्ति जागृत नहीं हो सकती और इसी साधना का नाम योग है। हम सब लोगों को नियमपूर्वक साधना करनी चाहिए। साधना करते-करते हमारे अंदर के रावण का नाश हो जाएगा, हमारी आसुरी वृत्तियाँ पराजित होंगी, तब हम शान्ति रूपी सीता को वापस लाने में समर्थ होंगे।

हमलोग चौबीसों घंटे अपने मन को उछलने देते हैं। इसे न तो दिन में चैन है और न ही रात में आराम। चित्त एक जगह पर स्थिर नहीं रह पाता। जब चित्त एकाग्र नहीं होगा तो तुम जीवन में महान् कैसे बनोगे? मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ी शक्ति मन की है। आज तो हमलोगों का मन ही बीमार है। तुम कहोगे कहाँ है बीमारी? अरे! तुम लोग केवल शरीर की बीमारी को ही पहचानते हो, मन की बीमारी को नहीं। मन की सबसे बड़ी बीमारी है अशान्ति। अब बताओ तुम्हारा मन अशान्त रहता है कि नहीं? छोटी-छोटी बातों पर खिन्नता आ जाती है। जैसे शरीर स्वस्थ रहने पर तुम खेत, दुकान या ऑफिस में काम कर सकते हो, वैसे ही मन के स्वस्थ रहने पर अपने जीवन में कोई भी काम कर सकते हो। इसलिए कुछ साधना कर लो। साधना का मतलब होता है, अपने मन को एकाग्र करना। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

हमारे भारतीय धर्म ग्रंथों में, चाहे वह रामचरितमानस हो, श्रीमद्भागवत हो या वेद शास्त्र हों, उनमें बतलाया गया है कि हम किस प्रकार अविद्या और अज्ञान को दूर करके ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। केवल धन की शक्ति और बाहरी दिखावे से देश दो-चार सौ साल चल सकता है, शाश्वत नहीं। भारत के निवासियों को मेरे इस छोटे-से संकेत को समझना होगा। मैं एकदम साफ बात बोलता हूँ। पैसा ज्यादा दिन नहीं टिकेगा, चाहे वह कुबेर का खजाना क्यों न हो। सैन्य बल भी ज्यादा दिन नहीं टिक सकता, मगर एक चीज हमेशा टिकती है, और वह क्या है? उस देश के निवासियों की साधना शक्ति। अगर यहाँ से साठ करोड़ साधक निकलेंगे तो भारत के इतिहास को कोई गिरा नहीं सकता। अरे! गरीबी और अमीरी तो आने-जाने वाली चीज है। कौन-सा ऐसा देश है जहाँ लुच्चे नहीं हैं और अत्याचार नहीं होता। मैं तो केवल भारत में ही नहीं, दुनिया का भ्रमण करता हूँ। बाहर तो अत्याचार और दुराचार यहाँ से चार गुना ज्यादा है। कोई भी ऐसा देश नहीं, जहाँ बेकारी, कोढ़ी, भिखारी और पागल नहीं हैं। अंतर केवल इतना है कि वहाँ छिपाया जाता है तो उनका पोल पीछे रहता है और यहाँ छिपाया नहीं जाता तो हम लोगों का पोल सबके सामने है।

कोई भी परिवार, समाज या राष्ट्र केवल धनशक्ति या शस्त्रबल पर कभी नहीं टिक सकता। शक्ति प्राप्त करने के लिए साधना जरूरी है। साधना का तात्पर्य काली मंदिर वाली साधना से नहीं, बल्कि आत्मबल की साधना से है। यदि आत्मबल वाले कुछ साधक हो जाएँ तो संसार के इतिहास का रूप बदल जाएगा। किसी भी

देश को वहाँ के शासक अथवा राजनेता नहीं बनाते, बल्कि वहाँ के साधक बनाते हैं और यदि राजनेता साधक हो जाएँ तो सोने पर सुहागा। आत्मबल से युक्त व्यक्ति ही समाज को, देश को कुछ दे सकता है।

कितने राजा पराजित हुए, कितने राजा विजयी हुए, पर श्रीराम की विजय अलौकिक विजय थी, क्योंकि उनकी विजय धर्म और नीति की थी। उनके सामने सिद्धान्तों और आदर्शों की चुनौती थी। राम प्रबल, शक्तिशाली व्यक्ति थे। वे धर्म और नीति को जानते थे। इस कारण धर्म और नीति से समन्वित व्यवहार करते थे। धर्म कहते हैं आदर्श को और जब उस आदर्श को व्यावहारिक रूप देते हैं तब उसे नीति कहा जाता है।

हम और आप जैसे भारत के लोग राम के सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करते हैं। आज हम देशवासियों के सामने किस सिद्धान्त को रख रहे हैं? सिद्धान्त कोई भी हो, उसका आधार आध्यात्मिक होना चाहिए। लौकिक सत्य, लौकिक आवश्यकताएँ तो बदलती रहती हैं। आज भारत के सामने रोटी, कपड़े और मकान की समस्या है, पर यूरोप और अमेरिका के सामने तो यह समस्या नहीं है। ये लौकिक चीजें हैं, बदलती जायेंगी। हो सकता है एक-दो सौ सालों में रोटी-कपड़े की समस्या न हो। तब क्या समस्या नहीं रहेगी? अरे, तुम्हें रात में नींद नहीं आएगी जैसा आज समृद्ध देशों में हो रहा है। क्या लौकिक समस्याओं के समाधान हेतु सिद्धान्त बना सकते हो?

भगवान राम केवल भारत के नहीं, विश्व के इष्टदेव हैं। वे पूरे संसार में छाये थे। जिस युग में आज हम हैं, वह भारत के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह समय आत्म-विश्लेषण और राम को याद करने का है, क्योंकि संसार के करोड़ों लड़के-लड़कियाँ सत्य की खोज में भारत की ओर देख रहे हैं। वे कहते हैं, अगर सारे संसार को भय, उत्तेजना और पागलपन की स्थिति से कोई बचा सकता है तो वह है भारत की विद्या। यह कोई एक आदमी नहीं कहता, विश्व के सभी बड़े-बड़े विद्वान् आज इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भारत की आध्यात्मिकता दुनिया के लिए संजीवनी अमृत है, नहीं तो आदमी पागल हो जाएगा।

आज भारत चौराहे पर खड़ा है। आप लोगों को विचार करना होगा कि अपने समाज का, देश का, विश्व का पुनर्निर्माण किस प्रकार करेंगे। अगर भारत इस विशाल चुनौती को स्वीकार नहीं करेगा और अपने उत्तरदायित्व को नहीं निभायेगा तो इतिहास इसे कभी माफ नहीं करेगा। आज भारत के प्रति अन्य धर्म वालों की जितनी श्रद्धा, विश्वास, स्वीकृति और समर्पण की भावना है, इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ। सदैव यहाँ के धर्मों को हेय दृष्टि से देखा गया और इसकी निंदा की गई। मगर स्वामी विवेकानन्द जी के समय से लेकर आज तक एक बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। अब तो अन्य धर्मावलंबी भी अपने धर्मग्रंथों को एक किनारे रखकर गीता, रामायण, श्रीमद्भागवत और योगशास्त्र पढ़ते हैं। इसका मतलब है आपको मार्गदर्शक बनने के लिए तैयार होना पड़ेगा। इसलिए आप अपने समाज में साधना का श्रीगणेश करवाइये। जो परम्परा सैकड़ों वर्षों से लुप्तप्राय हो गयी थी उसे जीवित कीजिए। छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को शाश्वत योग में दीक्षित करो। आप सब स्कूलों में, जेलों में, चिकित्सालयों में, क्लबों में और अन्य जगहों पर जाकर योग संदेश बाँटो तथा उसके अनुसार एक नया समाज बनाओ। हम लोग इस प्रकार के समाज का निर्माण करेंगे, तभी भारतवर्ष अपने दायित्व को पूरा करेगा।

धर्म का प्रभाव तुरन्त नहीं, पीढ़ियों बाद होता है। उपदेशक के विचार प्रथम श्रोता के विचार बनते, पुन: श्रोता के सन्तानों के उपदेश बनते हैं। अन्ततोगत्वा परिपक्व होने के बाद उनके व्यवहार बनते हैं। धर्म-स्थापन एक दिन का सवाल नहीं। उसके लिए सदियों तक समाज को क्रान्ति करनी होती है। शताब्दियों की तपस्या के साकार होने का नाम है धर्मस्थापन।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग द्वारा अध्ययन क्षमता में वृद्धि

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग बच्चों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। जब बच्चे योग का अभ्यास करते हैं तो उनके सीखने की क्षमता में वृद्धि होती है। यहाँ स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन की एक घटना का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। जब वे अमेरिका के शिकागो शहर में थे, तो वे वहाँ के पुस्तकालय जाया करते, वहाँ से ढेरों पुस्तकें लिया करते, घर जाते और अगले दिन उन्हें वापस लौटा देते। कुछ दिनों के बाद पुस्तकालयाध्यक्ष को कुतूहल हुआ और उसने उनसे पूछा, 'आप इतनी सारी पुस्तकें क्यों ले जाते हैं जब उन्हें पढ़ने के लिए आपके पास समय ही नहीं है?' स्वामी विवेकानन्द ने उत्तर दिया कि उन्होंने प्रत्येक पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ को पढ़ा है। पुस्तकालयाध्यक्ष को विश्वास नहीं हुआ, इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने उसे उनकी परीक्षा लेने के लिए कहा। उसने एक पुस्तक खोली, एक पृष्ठ के एक अनुच्छेद को चुना और उन्हें यह बताने के लिए कहा कि उसमें क्या लिखा है। स्वामी विवेकानन्द ने बिना पुस्तक देखे उस अनुच्छेद के वाक्यों को यथातथ्य दोहरा दिया। पुस्तकालयाध्यक्ष आश्चर्यचकित रह गया और उसने और भी परीक्षाएँ लीं। हर बार स्वामी विवेकानन्द ने पुस्तक में लिखे शब्दों को ज्यों-का-त्यों दोहरा दिया।

बाद में पुस्तकालयाध्यक्ष ने पाया कि स्वामी विवेकानन्द की स्मरणशक्ति फ़ोटो लेने वाले कैमरे जैसी थी। वे पुस्तकों को पढ़ते नहीं थे। उनकी आँखें, उनका मन पृष्ठ की छवि उतार लेता था और जब भी वे चाहते थे पुस्तक का, पृष्ठ का, वाक्य का अनुस्मरण कर लेते थे। यह थी उनके मस्तिष्क और मन की क्षमता। उन्होंने इस क्षमता का विकास कैसे किया? स्वामी विवेकानन्द बनने के पूर्व जब वे सामान्य व्यक्ति, नरेन्द्र थे तब उनमें यह क्षमता नहीं थी। उनकी जीवन कथा से यह मालूम होता है कि उनके प्रारम्भिक जीवन में अनेक कठिनाइयाँ और समस्याएँ आयीं। फिर भी जब उन्होंने निष्ठापूर्वक योग का अभ्यास आरम्भ किया तब मस्तिष्क की उस विशेषता का विकास करने में सक्षम हो गये जिसे फ़ोटो-स्मृति कहते हैं।

यदि हम योग का समुचित उपयोग करना जानते हों, तो हम भी अपने मन-मस्तिष्क की क्षमताओं का विकास कर सकते हैं। योग मात्र आध्यात्मिक विकास का एक विषय नहीं है, बल्कि मन द्वारा निर्मित मायाजाल से निबटने का एक शक्तिशाली साधन है। एक विद्यार्थी के रूप में आपका अपने मन से सामना हुआ होगा। आप जानते हैं कि पढ़ाई पर ध्यान केन्द्रित करना कितना कठिन है, पाठों को याद करना कितना कठिन है। पूरा आत्मविश्वास होने के बावजूद परीक्षा के

समय आपने अध्ययन में जितनी मेहनत की है वह सब अचानक विलुप्त हो जाता है और परीक्षा कक्ष में आपका मस्तिष्क पूरी तरह शून्य हो जाता है। अधिकतर लोगों को ऐसा अनुभव होता है। हम जानते हैं कि मस्तिष्क को सम्भालना और उसकी क्षमताओं का विकास करना अत्यन्त कठिन है। लेकिन योग समाधान प्रदान करता है।

परीक्षा, स्मृति और एकाग्रता

विद्यार्थी प्राय: कहते हैं कि एकाग्रता का विकास कैसे करें, बिना घबराये हुए परीक्षा का सामना किस प्रकार करें और पाठों को किस प्रकार कण्ठस्थ करें। मस्तिष्क की एक विशेषता है स्मृति, दूसरी है बुद्धि और तीसरी है समझ। बुद्धि, स्मृति और समझ–विद्यार्थियों को इन तीन विशेषताओं को व्यवस्थित रखना है।

अतीत में लोगों ने इस पर बहुत विचार किया है कि शरीर एवं मन की क्षमताओं में किस प्रकार सुधार लाया जाये। शरीर के प्राकृतिक नियमों के अनुसार योग की विधियों का आविष्कार किया गया था। शरीर में अनेक ग्रंथियाँ हैं, और बच्चों में सबसे महत्त्वपूर्ण है पीनियल ग्रंथि जो सिर के केन्द्र में होती है। यही मानसिक क्षमता का विकास करती है। योग के अनुसार यदि आप अपनी पीनियल ग्रंथि को स्वस्थ रखते हैं, जिसका क्षय आठ वर्ष की अवस्था में आरम्भ हो जाता है, तो सीखने की प्रक्रिया, जानकारियों को धारण किये रखने की क्षमता और स्मृति में सुधार आता है।

पीनियल ग्रंथि को स्वस्थ्य रखने के लिए तीन विधियों का आविष्कार किया गया। पहला सूर्य नमस्कार है जिसका अभ्यास आप में से अधिकतर लोगों ने किया है। दूसरा है त्राटक, एकाग्रता के विकास के लिए। तीसरा है प्राणायाम, मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों को संतुलित रखने के लिए।

सूर्य नमस्कार

सूर्य नमस्कार विभिन्न आसनों से मिलकर बना हुआ आसन-क्रम है जो शरीर के विभिन्न अंगों तथा ग्रंथियों को प्रभावित करता है और यह सुनिश्चित करता है कि वे सर्वोत्तम ढंग से अपने कार्य करें। इसका अभ्यास प्रात:काल में किया जाना चाहिए, जब चारों ओर शान्ति तथा नीरवता होती है, जब आप तरोताज़ा हों और आप पर पढ़ाई के कारण तनाव या दबाव नहीं हो। इसे रक्त संचार को सुधारने के लिए, शरीर के विभिन्न भागों एवं अंगों को ऊर्जा प्रदान करने के लिए तथा श्वास को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है।

श्वास की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जब आप क्रुद्ध होते हैं या तनाव में होते हैं या कुण्ठित होते हैं तो आपका श्वसन अत्यंत उथला और तीव्र हो जाता

है। जब आप तनाव रहित और शान्त रहते हैं तब श्वसन गहरा और लम्बा होता है। वैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध किया जा चुका है कि श्वास मस्तिष्क की अनेक क्रियाओं को नियंत्रित करता है और श्वास को नियंत्रित करके हम मन की अवस्था को परिवर्तित कर सकते हैं, मस्तिष्क तथा स्नायु तंत्र के तनाव के स्तर को कम कर सकते हैं और सामंजस्य तथा शान्ति का अनुभव कर सकते हैं।

त्राटक

एकाग्रता का विकास करने के लिए त्राटक सबसे प्रभावकारी अभ्यास है। परीक्षा की अवधि में यदि आप पढ़ाई प्रारम्भ करने से पूर्व इसे पाँच मिनट करें तो आपको इससे होने वाले लाभ का अनुभव होगा। एक मोमबत्ती जलाकर उसे इस प्रकार रखें कि वह आपकी आँखों की सीध में रहे। बिना पलक झपकाये हुए उसकी लौ को आधा मिनट या जितनी देर आप आखें खुली रख सकते हैं, देखें। जब आपको आँखों को बंद करने की आवश्यकता महसूस हो, आँखें बंद कर लें और बंद आँखों के सामने लौ की छवि को देखें। जब छवि लुप्त हो जाती है तब बंद आँखों के सामने अंधेरा हो जाता है। इसके बाद आँखें खोल लें और पुन: बिना पलक झपकाये हुए लौ को देखें। आप जब भी आँखें बन्द करेंगे, आपको छवि या बिम्ब दिखेगा, उसे आप जितनी देर हो सके, देखें। आप पायेंगे कि बिम्ब एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता है बल्कि हिलता रहता है। कभी यह ऊपर जाता है, बायें जाता है, दायें या नीचे जाता है, यह हिलता रहता है। आपको बिम्ब को एक स्थान पर स्थिर रखने का प्रयास करना है; उसे हिलने नहीं देना है। सोने से पहले और अध्ययन आरम्भ करने से पहले इसे पाँच मिनट करें। कुछ ही दिनों में आप पायेंगे कि आप अपने पाठों को कण्ठस्थ करने और धारण रखने में सक्षम हो गये हैं। यह अभ्यास मानसिक एकाग्रता का विकास करता है और अध्ययन में सफलता के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है।

प्राणायाम

दोनों कानों को बंद कर मधुमक्खी के समान गुंजन करते हुए भ्रामरी प्राणायाम करने से मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध संतुलित हो जाते हैं। जब आपका मस्तिष्क संतुलित नहीं रहता

है तब आप मन को केन्द्रित नहीं कर सकते हैं, न ही पढ़ सकते हैं और न ही जीवन में सफल हो पाते हैं। मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों की क्षमताओं को समन्वित करने के लिए नाड़ीशोधन नामक एक अन्य प्राणायाम है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए।

नाड़ीशोधन को एक विशेष प्रकार से किया जाना चाहिए। सबसे पहले एक सीढ़ी की कल्पना करें। हमें अपने श्वास को इस प्रकार समन्वित करना है मानो हम सीढ़ियाँ चढ़ रहे हों। उदाहरण के लिए, यदि हमें एक श्वास में सात सीढ़ियाँ चढ़नी हों तो हम मानस दर्शन करते हैं, हम श्वास अन्दर लेते हैं और एक सीढ़ी चढ़ते हैं, श्वास रोकते हैं, श्वास लेते हैं, अगली सीढ़ी चढ़ते हैं, श्वास रोकते हैं, श्वास लेते हैं, एक सीढ़ी चढ़ते हैं, इत्यादि। इस प्रकार एक पूरक को सात भागों में बाँट देते हैं। उसके बाद हम इसी प्रकार रेचक करते हैं। रेचक भी सात भागों में बँट जाता है।

पहले दायीं नासिका को बन्द करें। बायीं नासिका से श्वास लें, रोकें; श्वास लें, रोकें, इस प्रकार करते हुए आप एक श्वास में सात चरणों में ऊपर चढ़ते हैं। इसके बाद श्वास छोड़ दें और उसी प्रकार सात चरणों में नीचे उतर जायें। अब बायीं नासिका को बंद कर लें, दायीं नासिका को खोल दें और पुन: सात बार श्वास लें और रोकें। उसके बाद श्वास छोड़ दें और सात चरणों में नीचे उतर आयें। यदि आपको किसी कठिनाई का अनुभव हो तो चरणों की संख्या कम कर दें। नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास को पूरा करने के लिए इस प्रक्रिया को दोनों नासिकाओं से पाँच-पाँच बार दोहरायें। यदि आप इस अभ्यास को समझ लें और इसे करने का प्रयास करें तो आप पायेंगे कि आपके मस्तिष्क के धारण करने की क्षमता बढ़ गयी है। आप अत्यन्त कम प्रयास से ही कण्ठस्थ करने लगेंगे और एकाग्र होने लगेंगे। अपने अध्ययन में सफल होने के लिए और अपने मन को नियंत्रित करने के लिए ये तीन अभ्यास अनिवार्य हैं।

बाल योग मित्र मण्डल

मुंगेर में हमने बाल योग मित्र मण्डल नामक बाल आन्दोलन शुरू किया है जिससे हजारों बच्चें जुड़े हैं। इन बच्चों की अवस्था आठ से चौदह वर्ष के बीच है, वे स्वयं अपनी संस्था की देखभाल करते हैं और अपने कार्यकलापों को व्यवस्थित रखते हैं। चौदह वर्ष के बाद वे इस संस्था से सेवा-निवृत्त हो जाते हैं और युवाओं की संस्था से सम्बद्ध हो जाते हैं। चौदह वर्ष की अवस्था तक हम लोग केवल योग के मौलिक अभ्यासों को ही सिखलाते हैं। इतने वर्षों में हमने पाया है कि जो बच्चे प्रारम्भ में अपनी पढ़ाई में कमजोर होते हैं वे आगे चलकर अच्छे परिणाम देने लगते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चे देश के अन्य हिस्सों में जाकर

दूसरे बच्चों को योग का प्रशिक्षण देते रहते हैं और उनके पास अपने अध्ययन के लिए समय नहीं रहता। तब वे अपनी परीक्षा के ठीक पहले अपनी पुस्तकें पढ़ते हैं, परीक्षा देते हैं और अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण होते हैं। हम लोग बच्चों को अनेक अभ्यास नहीं सिखाते हैं, बल्कि केवल वे ही बतलाते हैं जिनका उपयोग वे अध्ययन को सुधारने में एवं मस्तिष्क को तीक्ष्ण करने में कर सकते हैं।

योग निद्रा

एक बार एक बालक आश्रम में आया। हालाँकि उसे कभी स्कूल नहीं भेजा गया था, यहाँ उसे योग निद्रा नामक विशेष अभ्यास के द्वारा विज्ञान, कला, वाणिज्य, भाषाएँ इत्यादि की शिक्षा दी गयी। योग निद्रा एक ऐसी विधि है जिसे आप रात्रि में नींद से सोने के पहले कर सकते हैं, लेकिन उसके लिए आपको एक शिक्षक की आवश्यकता है जो आपका मार्गदर्शन करे। वह बालक जब सो रहा होता था तब उसके गुरु उसे निर्देश देते थे जो उसके मस्तिष्क में अंकित हो जाता था। प्राय: गुरु पुस्तकों से अध्यायों को पढ़ते। अगले दिन जब वे उसी अध्याय को पढ़कर बालक को सुनाते थे, तो बालक कहता, 'मैं इस विषय को जानता हूँ,' और वह उस अध्याय में लिखे गये विषय का वर्णन कर देता था। यह एक ऐसा प्रयोग है जिससे पता चलता है कि हम जब सो रहे होते हैं तब भी हमारा मस्तिष्क जानकारियों को ग्रहण कर उन्हें अंकित कर सकता है।

बाद में, हमलोगों ने एक जर्मन बालिका पर योगनिद्रा का प्रयोग किया। उसे योग निद्रा का अभ्यास कराया और इस अवस्था में ही अनेक चीजें सिखायीं। जब उसके माता-पिता ने उसे स्कूल भेजा तो पहले ही दिन उसने स्कूल से लौटने के बाद कहा, 'मुझे स्कूल जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं वह सब जानती हूँ जो वहाँ सिखा रहे हैं।' जब उसे अगली कक्षा में भेजा गया तो उसने यही बात दोहरायी। वह बालिका अधिक दिनों तक स्कूल नहीं गयी, लेकिन आज उसे सभी स्कूली विषयों का ज्ञान है। उसकी परीक्षा ली गयी और वह सफल रही। अभी वह केवल चौदह वर्षों की ही है, लेकिन पिछले वर्ष उसे एक कॉलेज में दाख़िला मिल गया। यह एक ऐसा उदाहरण है जिससे ज्ञात होता है कि योग निद्रा की प्रक्रिया किस प्रकार मानव मस्तिष्क को प्रभावित कर सकती है।

योग की आदत बनायें

यह योग का सकारात्मक प्रभाव है, इसलिए अपने जीवन में योग को एक अवसर अवश्य दें। यदि आपने निष्ठापूर्वक स्वयं को योग के अभ्यास में लगा दिया है तो एक वर्ष के अन्दर आप एक भिन्न विद्यार्थी होंगे। यदि आप एक वर्ष तक सूर्य नमस्कार, त्राटक और नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास गम्भीरतापूर्वक करते हैं तो आपकी समस्याओं में परिवर्तन आ जायेगा। यदि आज आप कह रहे हैं कि मन को एकाग्र करने में कठिनाई होती है, तो अगले वर्ष आप कहेंगे कि अब आपको स्कूल जाने की आवश्यकता नहीं है और आपको किसी कॉलेज में दाख़िला नहीं मिल रहा है, क्योंकि आपकी अवस्था कम है। इसलिए आप यह निर्णय कर लें कि आपको किस समस्या का सामना करना है–एकाग्रता के अभाव का या श्रेष्ठ होने की समस्या का!

श्रेष्ठ होने की समस्या का तात्पर्य है कि आपने स्वयं को योग के प्रति कटिबद्ध कर लिया है। योग को मात्र शारीरिक व्यायाम नहीं समझें जिसे हम स्वास्थ्य के लिए या बीमारी दूर करने के लिए करते हैं। योग को मन-मस्तिष्क की शक्ति और क्षमता को सुधारने तथा उनके विकास का एक मार्ग मानना चाहिए। तब आप अपनी स्कूली पढ़ाई से लेकर अपने भावी जीवन तक सफल होते रहेंगे। आप सबके लिए योग का यही संदेश है–ऐसी दृढ़ता और समर्पण के साथ योग का अभ्यास करें कि यह आपके जीवन में एक आदत बन जाये।

आश्रम जीवन की सार्थकता

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

आश्रम-जीवन का मूल हालाँकि प्राचीनकाल में पाया जाता है, फिर भी वह आधुनिक मानव की आवश्यकताओं के अनुकूल है। आज विश्व के अनेक लोग अपने व्यस्त जीवन में से कुछ समय निकाल कर किसी आश्रम में व्यतीत करना पसन्द करते हैं। इससे उन्हें भौतिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक स्तर पर पुन: ऊर्जान्वित और तरोताजा होने का अवसर मिलता है। निरर्थक आमोद-प्रमोद में छुट्टियाँ बिताने से उतना विश्राम और शान्ति नहीं मिलती, जितनी शान्ति और शक्ति आश्रम-जीवन से प्राप्त होती है।

आइये उन कारणों को समझने का थोड़ा प्रयास करें, जिनसे समूचे विश्व में आश्रम-जीवन का पुनरुदय हो रहा है। सर्वप्रथम तो आश्रम शान्त, एकान्त और प्रकृति की गोद में स्थित होते हैं। वे शोरगुल से दूर होते हैं जहाँ व्यक्ति अपने भीतर तनावरहित शान्ति का अनुभव करता है। वह स्वयं को अपने निकट पाता है। यह तो एक तथ्य हुआ, परन्तु इसे आश्रमों से मिलने वाली शान्ति का अन्तिम कारण नहीं कह सकते।

आश्रमों की महत्ता केवल बाह्य वातावरण पर आधारित नहीं होती। इसका सम्बन्ध स्थान की ऊर्जा और स्पन्दनों से है। हर स्थान की एक विशेष ऊर्जा और भावना होती है, जो वहाँ के वातावरण में व्याप्त रहती है। इसका आभास वहाँ पहुँचते ही होने लगता है। कुछ ऐसे स्थान होते हैं जो कितने ही सुन्दर क्यों न हों, वहाँ पहुँचते ही नकारात्मक प्रभाव अनुभव होने लगता है। इसका कारण वे सूक्ष्म शक्तियाँ होती हैं, जो वहाँ के वातावरण में छाई रहती हैं। उस स्थान में दीर्घकाल तक रहे लोगों द्वारा ही यह सूक्ष्म वातावरण निर्मित होता है।

आश्रम आध्यात्मिक ऊर्जा के भंडारगृह होते हैं। आश्रमवासी ऐसी प्रभावशाली तरंगों का वातावरण बना देते हैं कि आश्रम में आने वाला नवागंतुक भी इन तरंगों से अछूता नहीं रहता। जैसे किसी कमरे में अनेक वॉयलिन रखे हों और उनमें से एक को बजाया जाए तो अन्य सभी में कम्पन होने लगता है वैसे ही आश्रमवासियों के सात्त्विक स्पन्दन वहाँ आने वाले सभी लोगों में पवित्रता और आध्यात्मिकता के भाव जागृत करते हैं।

नवागन्तुकों को प्राय: आश्चर्य होता है कि वे इस परिवर्तन का अनुभव उसी क्षण से करने लगते हैं जब वे आश्रम में प्रवेश करते हैं। उनके भीतर की नकारात्मकता धीरे-धीरे सकारात्मकता में बदलने लगती है। निराशा और हताशा की जगह दिल में साहस और उत्साह भरने लगता है, जीवन के संघर्षों

का डटकर सामना करने का हौसला बढ़ जाता है। बीमारी दूर होने लगती है, शरीर और मन स्वस्थ तथा प्रफुल्लित होने लगते हैं। हो सकता है कि ऐसे व्यक्ति जिनके व्यक्तित्व में निराशा और नकारात्मकता गहराई तक भरी हो, आश्रम वातावरण से तत्काल प्रभावित न हों, लेकिन वे भी अगर कुछ समय तक आश्रम में रहें, तो निश्चय ही उनमें परिवर्तन होगा और वे दुनिया को एक दूसरी दृष्टि से देखने लगेंगे।

आश्रमों की यही विशेषता है जो लोगों को आकृष्ट करती है। आश्रम का वातावरण, जीवनशैली, स्पन्दन आदि वहाँ आने वाले हर व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व को पुनर्संयोजित करते हैं और वे आश्रम वातावरण के अनुकूल ढल जाते हैं। स्वाभाविक है कि इससे उन्हें सुख और शान्ति का अनुभव होता है।

हम प्राय: इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं कि हमारे नकारात्मक विचार और व्यवहार हमारे आस-पास के वातावरण को प्रभावित करते हैं। इससे हमारे चारों ओर एक नकारात्मक दायरा निर्मित हो जाता है जिसे अन्य लोग चेतन या अवचेतन स्तर पर अवश्य अनुभव करते हैं। कालान्तर में यह नकारात्मकता हम पर ही दुगुनी मात्रा में लौटकर आती है और हम नकारात्मकता के दल-दल में और गहरे फँस जाते हैं।

जब हम किसी विशेष स्थान अथवा घर के बारे में अपने अनुभव बताते हैं, तो कहते हैं कि वहाँ का वातावरण सुखद और आकर्षक अथवा बोझिल तथा अनाकर्षक था। जिस जगह जैसे लोग रहते हैं, वहाँ का वातावरण वैसा ही बन जाता

है। वह स्थान वहाँ रहने वाले लोगों के व्यक्तित्व, विचारों और तरंगों को ग्रहण करता है। जब दूसरे लोग वहाँ आते हैं, तो यह वातावरण उन्हें भी अपने ढंग से प्रभावित करता है।

आश्रम के वातावरण में शक्तिशाली सकारात्मक प्रभाव छाए रहते हैं। यदि कहीं से थोड़ी नकारात्मकता आ भी जाए तो वह निष्प्रभावी हो जाती है। इसका कारण आश्रम में रहने वाले लोगों की आध्यात्मिकता और उनका समर्पण भाव होता है। इसलिए जब कोई नवागन्तुक कुछ समय के लिये आश्रम आता है, तो आश्रम के पवित्र आध्यात्मिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। आश्रमवासी अपनी आध्यात्मिक साधना, समर्पण और गुरुभक्ति द्वारा आश्रम के वातावरण को उच्च और सक्रिय रखते हैं।

इसी कारण योग साधकों से कहा जाता है कि वे प्रतिवर्ष कुछ समय के लिये आश्रम के वातावरण में अवश्य रहें। यदि वे ऐसा करते हैं तो उनके अपने घर में भी आश्रम जैसा वातावरण अवश्य बन सकता है। साधक का घर-परिवार एक छोटे आश्रम जैसा बन जाना चाहिए, ताकि जो भी अतिथि उनके यहाँ आये, उसे भी शान्ति, एकता तथा पवित्रता का अनुभव हो सके। परिवार के हर सदस्य को अपने भीतरी और बाहरी वातावरण के साथ सामंजस्य का अनुभव करना चाहिए। पारिवारिक जीवन में विपत्तियाँ और कठिनाइयाँ तो आती ही हैं, क्योंकि जीवन समतल नहीं होता। परन्तु आपत्तियों-विपत्तियों से हमारा सन्तुलन और सामंजस्य नष्ट नहीं होना चाहिए। हम शान्ति और आत्मविश्वास के साथ हर आने वाली अप्रिय स्थिति का सामना करें, परन्तु स्वयं को उनसे टूटने न दें। यदि ऐसा होता है तो परिवार का ढाँचा बिखरेगा नहीं। कभी-कभी झगड़े, मतभेद तथा तनाव उपस्थित होंगे, परन्तु परिवार का वातावरण शान्त, सन्तुलित तथा आध्यात्मिक बना रहेगा।

घर में सामंजस्य और एकता तभी हो सकती है अगर परिवार के सदस्यों ने वास्तव में आश्रम के सार को ग्रहण किया है, और यह सार-तत्त्व है कर्मयोग की भावना। कर्मयोग की भावना हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन जानी चाहिए ताकि हम हर क्षण, हर जगह उसका अभ्यास कर सकें। इसके लिए यह जरूरी है कि हमें आश्रम जीवन का अनुभव मिले और हम वहाँ की हर गतिविधि में भाग लेकर कर्मयोग के रहस्य को समझ सकें।

आश्रम का प्रत्येक सदस्य बिना किसी फलाकांक्षा के अपने दायित्वों का निर्वाह करता है। कोई भी ऐसा नहीं सोचता कि वह जो काम कर रहा है, उसके बदले उसे कुछ मिलेगा। हर व्यक्ति अपनी पूरी क्षमता और शक्ति लगाकर बिना फल की परवाह किये कार्य करता है। इससे उसकी चेतना गहरी और विस्तृत होती है तथा उसके कार्य में दक्षता आती है। व्यक्ति को चाहे जो भी काम दे दिया जाये वह उसे करने के लिये सक्षम होता है। इससे उसमें कठिनाइयों और तनावों से बाहर निकलने की क्षमता आती है, जो उसे पारिवारिक जीवन में भी शक्ति और आत्म-विश्वास प्रदान करती है।

कर्मयोग न केवल वैराग्य और निष्काम भाव से किया जाने वाला कार्य होता है, बल्कि वह उच्च एकाग्रता और सजगता के साथ किया गया कार्य भी होता है। इस बात का महत्त्व नहीं है कि आप कौन-सा कार्य कर रहे हैं, महत्त्व केवल इस बात का है कि उसे आप कितनी एकाग्रता और कितनी सजगता के साथ कर रहे हैं। उसमें आप एकाग्रतापूर्वक लगे हैं, अथवा आपका मन फल की इच्छा और नाम और यश की महत्त्वाकांक्षा द्वारा विक्षुब्ध है?

संन्यासी की प्राथमिक साधना कर्मयोग होती है। हठयोग, राजयोग तथा क्रियायोग जैसी अन्य साधनायें उसके लिए गौण होती हैं। कर्मयोग द्वारा ही संन्यासी अपने संचित कर्मों का क्षय करता है तथा नये संस्कारों का निर्माण और संचय नहीं होने देता। कर्मयोग उसके संस्कारों को नि:शेष करता है। जैसे-जैसे उसका मन साफ होता जाता है, उसकी चेतना तथा एकाग्रता भी परिष्कृत और तीव्र होती जाती है।

आश्रम वातावरण में कर्मयोग उच्च चेतना के विकास के लिए जरूरी है। घर-परिवार में कभी-कभी अपनी शक्तियों को सकारात्मकता की ओर मोड़ना कठिन होता है। जिन लोगों को आप अच्छी तरह जानते और जिनके बीच रहते हैं, उनके साथ आपके व्यवहार और भाव एक आदत के अनुसार हो जाते हैं। लेकिन आश्रम में ऐसा नहीं होता। वहाँ आप बिल्कुल अजनबियों के बीच आप रहते और कार्य करते हैं। उनसे आपका कोई स्वार्थपूर्ण अथवा निकट सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये आपका अहंकार आपको नचा नहीं सकता। इसके अलावा अनेक आश्रमवासियों और साधकों के सकारात्मक स्पन्दन आपको प्रेरित करते हैं।

इसलिये हर साधक को हर साल अपने व्यस्त जीवन से कुछ समय निकालकर आश्रम आना चाहिए। वह आश्रम आकर ही अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को आध्यात्मिक चेतना की प्राप्ति की दिशा में लगाना सीख सकता है। आश्रम में ही उसे कर्मयोग की प्रेरणा मिलती है तथा अपने भीतर जागृत आध्यात्मिक ऊर्जा का उपयोग वह अपने विकास के लिये कर सकता है। उसके विकास में गति आती है। कर्मयोग का दर्शन उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनता है और जब वह अपने घर लौटता है तो वहाँ भी सुन्दर, आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण कर सकता है।

बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक निर्देश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

1. प्रतिदिन सबेरे चार बजे उठो। यह ब्रह्ममुहूर्त का समय है जो ईश्वर-ध्यान के लिए अत्यन्त अनुकूल है।
2. *आसन*—पूर्व या उत्तर की ओर अभिमुख होकर आधे घण्टे तक पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठकर जप और ध्यान करो। धीरे-धीरे ध्यान की यह अवधि तीन घण्टे तक बढ़ाओ। उत्तम स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य हेतु शीर्षासन और सर्वांगासन का अभ्यास करो। बाग-बगीचे में टहलने जैसे हल्के-फुल्के व्यायाम भी नियमित रूप से करो। प्राणायाम की बीस आवृत्तियाँ करो।
3. *जप*—ॐ, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ शरवणभवाय नमः, सीता राम, श्री राम, हरि ॐ या गायत्री जैसे किसी भी मंत्र का स्वरुचि अनुसार चयन करके प्रतिदिन 108 से 21,600 बार तक जप करो।
4. *आहार में अनुशासन*—शुद्ध सात्त्विक आहार लो। मिर्च-मसाले, इमली, लहसुन, प्याज, तेल, सरसों, हींग और खट्टी चीजों का त्याग करो। मिताहार का पालन करो। पेट में आवश्यकता से अधिक भोजन मत ठूँसो। जो व्यंजन आपको सर्वाधिक प्रिय हों, उनका साल में एक बार, सप्ताह या महीने भर के लिए त्याग करो।
5. ध्यान के लिए एक अलग तालाबन्द कमरा रखो।
6. *दान*—हर महीने या हर दिन अपनी क्षमता अनुसार दान करो। हर रुपये में से कम-से-कम छः पैसे दूसरों के लिए खर्च करो।
7. *स्वाध्याय*—गीता, रामायण, भागवत, श्री विष्णु सहस्रनाम, ललिता सहस्रनाम, आदित्य हृदय, उपनिषद्, योग वासिष्ठ, बाइबिल, ज़ेन्द अवेस्ता, कुरान, गुरु ग्रन्थ साहिब अथवा त्रिपिटक जैसे ग्रन्थों का प्रतिदिन आधे से एक घण्टे तक स्वाध्याय करो और उनपर चिन्तन-मनन करो।
8. *ब्रह्मचर्य*—वीर्य रूपी जीवनी शक्ति का बड़ी सावधानी से संरक्षण करो। वीर्य ईश्वरीय विभूति है, अपरिमित शक्ति है। यही जीवन, बुद्धि और विचार का सार तत्त्व है।
9. *प्रार्थना*—कुछ स्तोत्रों अथवा प्रार्थना श्लोकों को कण्ठस्थ कर लो और जप या ध्यान के लिए आसन में बैठते ही उन्हें दुहराओ। इससे तुम्हारा मन तुरंत उदात्त भावों से भर जाएगा।

10. *सत्संग*–नित्यप्रति सत्संग करो। बुरी संगति, धूम्रमान, मद्यपान और मांसाहार का त्याग करो। किसी भी बुरी आदत को अपने भीतर पनपने मत दो।

11. *एकादशी पर उपवास*–एकादशी के दिन पूर्ण उपवास करो। यदि यह सम्भव न हो सके तो दूध और फल पर ही निर्वाह करो।

12. *जप माला*–अपने गले में या अपनी जेब में या रात को सोते समय अपने तकिये के नीचे जप माला अवश्य रखो।

13. *मौन*–प्रतिदिन दो-तीन घण्टे के लिए मौन का पालन करो।

14. *सत्य वचन*–हर हाल में सच बोलो। थोड़ा बोलो, मधुर बोलो।

15. अपनी जरूरतों को कम करते जाओ। अगर तुम्हारे पास चार कमीजें हैं तो उनकी संख्या घटाकर तीन या दो कर दो। सुखी, सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करो। अनावश्यक चिंता से बचो। सरल जीवन और उच्च विचार रखो।

16. *अहिंसा*–कभी किसी को चोट मत पहुँचाओ। अंहिसा परमो धर्मः। क्रोध को प्रेम, क्षमा और दया द्वारा नियंत्रित करो।

17. *स्वावलम्बन*–नौकरों या सेवकों पर निर्भर मत रहो। स्वावलम्बन एक महान् सद्‌गुण है।

18. *आत्म-विश्लेषण*–रात को सोने से पहले उन गलतियों को याद करो जो आपने दिन में की हैं। आध्यात्मिक दैनन्दिनी रखो और उसके माध्यम से स्वयं को सुधारने का प्रयास करो। बीती हुई बातों और गलतियों पर जरूरत से ज्यादा मत सोचो।

19. *कर्तव्य-पालन*–याद रखो कि मृत्यु किसी भी समय तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे सकती है। इसलिए अपने कर्तव्यों के पालन में कभी मत चूको। सदाचार का पालन सदा करते रहो।

20. *शरणागति*–जिस समय सोने जाते हो और जिस समय जागते हो, भगवान को अवश्य याद करो। अपने आपको ईश्वर के प्रति पूरी तरह समर्पित कर दो।

इन सभी नियमों का अक्षरशः पालन होना चाहिए। अपने मन को बिल्कुल ढील मत दीजिये। यह सभी साधनाओं का सार है। यह आपको मोक्ष के द्वार तक ले जाएगा।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

विषाद का यौगिक निदान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आजकल दुनिया में विषाद एक बहुत बड़ी बीमारी है। जब आदमी कुछ काम नहीं करता है, उसको कुछ करने के लिए नहीं होता है, दिनभर बैठे या लेटे रहता है और उसका दिमाग बहुत जगह घूमता है, तब उसको विषाद होता है। और उस विषाद की अवस्था में वह अस्थिर हो जाता है। एक नौकरी में होगा, उसको छोड़कर दूसरी में जाने की कोशिश करेगा। एक व्यापार कर रहा होगा तो सोचेगा, इसको छोड़कर दूसरे में जाएँगे तो नफा होगा। उसका मन अस्थिर हो जाता है। उसी तरह से वह अपनी बीबी के बारे में सोचता होगा। जब मनुष्य का मन अस्थिर होता है, जब उसको अपना वर्तमान अच्छा नहीं लगता, तब वह किसी काल्पनिक भविष्य में जाता है।

तुम अगर एक ही जगह पर गहरा गड्ढा खोदोगे, तो तुमको कभी-न-कभी पानी जरूर मिलेगा। लेकिन दो जगहों पर थोड़ा-थोड़ा गड्ढा करोगे, तो हो सकता है कि कहीं भी पानी न मिले। उसी तरह से जब एक जगह पर मन स्थिर नहीं रहता, कई जगहों पर भटकता रहता है, तब कुछ भी हाथ नहीं आता। आज यह विषाद की बीमारी बहुत लोगों को है। आज ऐसे बहुत कम जवान आदमी हैं जो अपनी जगह पर हैं, बाकी सब बेजगह हैं। उनके सपने बहुत बड़े हैं, क्योंकि वे पढ़ते बहुत हैं। मन की तो कोई सीमा नहीं होती। विचारों, अभिलाषाओं और सपनों की कोई सीमा नहीं होती। जिनका अपने मन पर कोई नियंत्रण नहीं होता, अपने सपनों और अभिलाषाओं पर कोई नियंत्रण नहीं होता, ऐसे आम लोगों को योग सिखाना होगा।

गीता कहती है कि अर्जुन को विषाद हो गया था। गीता के पहले अध्याय का नाम है 'अर्जुन विषाद योग।' भगवान को उसके विषाद का इलाज करते-करते सत्रह अध्याय लगे। बार-बार भगवान उसको समझाते और बार-बार वह पूछता था। आखिर में अट्ठारहवें अध्याय में उसने कहा, 'भगवान अब समझ में आ गया।'

नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देह: करिष्ये वचनं तव॥18.73॥

भगवान को इतनी कुश्ती करनी पड़ी एक विषाद को दूर करने के लिए। विषाद तो व्यापार, पढ़ाई या शादी, किसी भी वजह से हो सकता है। अर्जुन को आखिर विषाद क्यों हुआ था? जीवनभर वह कौरवों से लड़ने की तैयारी कर रहा था। जिन्दगीभर उसने वही काम किया। एकदम अव्वल दर्जे का तीरंदाज बना और

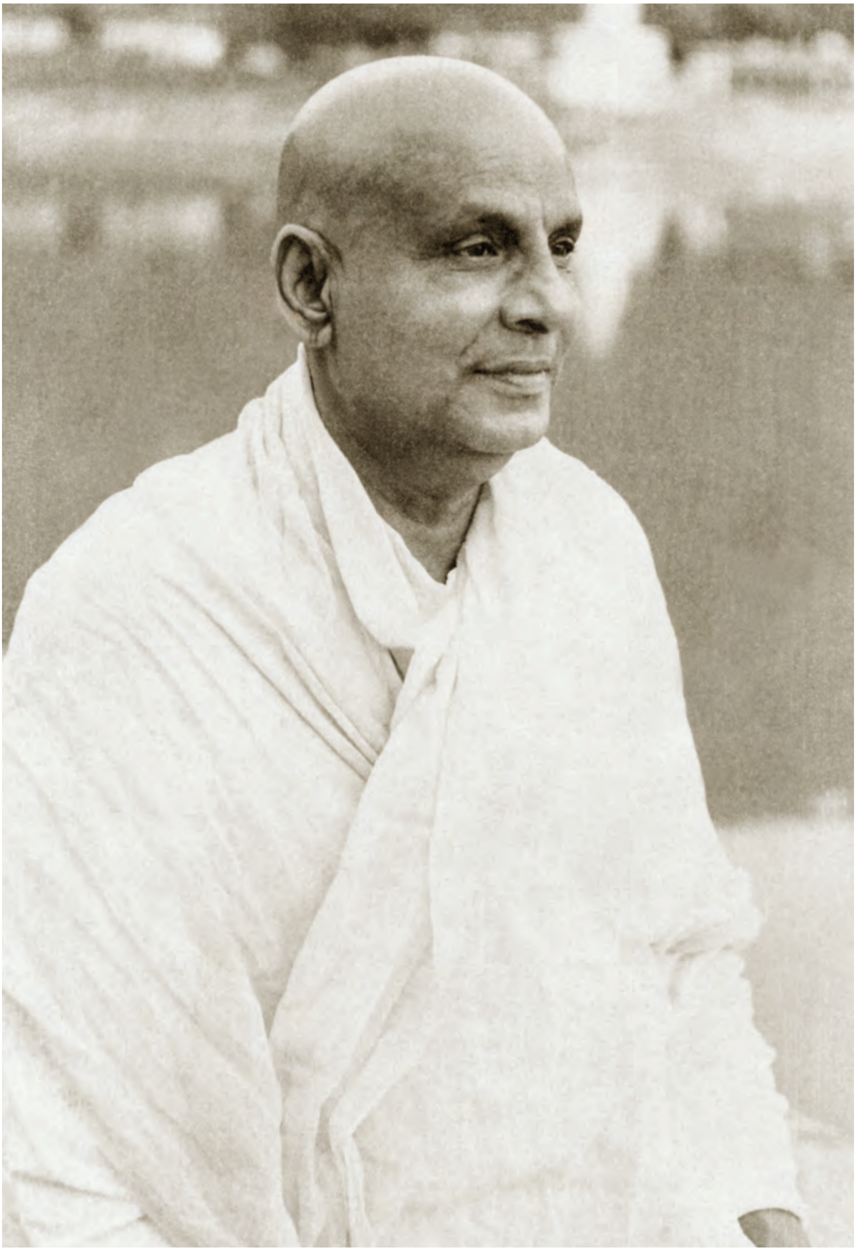

कैलास जाकर भगवान शिव से अमोघ अस्त्र भी माँग लिया था। उसने लड़ने के लिए सब अस्त्र-शस्त्र जमा करके रखे थे।

तुम जानते हो जब अर्जुन युद्ध में उतरा उसकी उम्र क्या थी? 76 साल। इतने साल वह तीरंदाजी इसलिए सीखता था कि मैं लड़ाई में कौरवों को मार सकूँ। पर जब लड़ाई का समय आया, वह रोकर बोला, 'नहीं, मेरा दिल धुक्, धुक् कर रहा है। वे सब तो मेरे भाई, मामा, चाचा, ताऊ, भतीजा, भांजा हैं। नहीं भगवान! मुझसे लड़ा नहीं जाएगा।' भगवान बोले, 'इतने साल तक तुम क्या कर रहे थे? तुमको यह अक्ल तीस-चालीस साल पहले क्यों नहीं आई? अब सारी तैयारी हो चुकी है, यहाँ मैदान में लड़ाई के लिए सेना इकट्‌ठी हो चुकी है। सबके शंख बज रहे हैं, युद्ध शुरू होने वाला है और तुम बोलते हो लड़ूँगा नहीं। क्या हो गया तुमको?' तब अर्जुन ने कहा, 'भगवन्, मुझे सब चीजें नकारात्मक दिख रही हैं।'

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥1.30॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥1.31॥

ये तो विषाद के ही लक्षण हैं, और यह अवसाद बहुत सामान्य बीमारी है। किसी को तो बहुत देर के लिए होती है, किसी को दिन में एक-आध बार, तो किसी को

शाम को सोने के समय होती है। दिन को हो गया तो सिगरेट पी लेते हैं, शाम को हुआ तो बोतल। बहुत ज्यादा अवसाद हुआ तो फिर गांजा और कोकेन भी आ जाता है। अमेरिका के लोग कोकेन क्यों लेते हैं? विषाद के कारण। विषाद वह अवस्था है जब मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है, क्या करूँ भगवान? कई लड़कियाँ हैं जो पढ़ती हैं, पर इम्तिहान नहीं देतीं, कहती हैं इस साल 'ड्रॉप कर जाएँगे।'

पेट, घुटने, कमर वगैरह का दर्द, ये तो छोटी बीमारियाँ हैं। इंसान की बढ़ती हुई बीमारी है विषाद। इसे दूर करने के लिए आजकल लोग कोकेन का नशा लेते हैं। कोकेन को ये लोग बोलिविया में चुनते हैं, वहाँ से उसको लाते हैं कोलम्बिया। वहाँ उसका पाउडर बनाते हैं, भूसा। फिर उसको लाते हैं अमेरिका। वहाँ बहुत सारे हवाई अड्डे हैं जहाँ हवाई जहाज से उतार लेते हैं, माल सरका लेते हैं और हवाई जहाज वापस लौट जाता है। सरकार इस मामले में सख्त है, पर उससे कुछ होता नहीं है। अमेरिका में बहुत-से लड़के-लड़कियाँ इसे लेते हैं।

हिन्दुस्तान में भी अट्ठाइस-तीस साल के जवान लड़कों को विषाद होने लग गया है। अब क्यों होने लग गया है? इस पर तुम लोगों को, जो पढ़े-लिखे हो, योग के शिक्षक हो और योग सिखाते भी हो, सोचना होगा कि इसमें आहार, ब्रह्मचर्य, संयम आदि का क्या स्थान है। यह सब जरूर सोचना चाहिए। मैं यह सब इसलिए समझा रहा हूँ कि देवघर, जामतारा या धनबाद जैसे छोटे शहरों से लोग बड़े शहरों में जा रहे हैं और वहाँ उनको इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

हर कोई अवसाद से गुजरता है। साधु-महात्मा भी समाधि की एक अवस्था में ऐसी स्थिति को पार करते हैं, जिसे एक विषादग्रस्त व्यक्ति पार करता है। सुन लो ध्यान से। समाधि की एक अवस्था होती है, जिसमें मस्तिष्क की वही स्थिति होती है जो एक विषादग्रस्त व्यक्ति की होती है। शरीर में कोई रासायनिक या हॉर्मोनल गतिविधि नहीं होती। पाचन तंत्र, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायु तंत्र, सब चुप। वह स्थिति समाधि की है। उस स्थिति से जब साधक उतरता है, तब उसे सारा संसार फरेब और झूठा लगता है। माँ, बाप, बेटा, भाई, पति, पत्नी, सब झूठे हैं। सब तो मरने वाले हैं। ये कहाँ से आए हैं? ऐसे विचार आने लगते हैं। समाधि के बाद ऐसा बोध होता है। हमें हुआ है। ऐसा ख्याल आता है कि मरने दो न दुनिया को, क्यों परवाह करें। पर हमें गुरु मिल गए। गुरुजी ने कहा, 'तुम ठीक सोच रहे हो। पर रोज़ मेरा हुक्का भर दिया करना वक्त पर। मेरी बीबी के कपड़े साफ कर देना।' वैसे मेरे गुरुजी की बीबी नहीं थी, मैं तो सिर्फ मज़ाक के लहजे से बोल रहा हूँ!

गुरुजी आगे बोलते हैं, 'मेरे बच्चे को रोज नहला देना। और ये बर्तन ढंग से साफ करना। तुम जो सोच रहे हो, ठीक सोच रहे हो। दुनिया मिथ्या है, सब बेकार है। मगर मेरा हुक्का मिथ्या नहीं है। मेरी बीबी के कपड़े मिथ्या नहीं हैं। और मेरा

बबुआ मिथ्या नहीं है। ये जो भांडे-बर्तन रखे हैं, ये भी मिथ्या नहीं हैं, इनको समय पर साफ करना। और उस गैया के लिए घास भी लेते आना।' अब चेला बोलता है, 'हाँ, गुरुजी! आप ठीक कहते हैं।' और फिर बेचारा सवेरे चार बजे से शाम को आठ बजे तक गाय को नहलाता है, पानी पिलाता है, चराता है, बर्तन साफ करता है, गुरु-माता के कपड़े साफ करता है, गुरु-पुत्र का काम करता है। और बीच में गुरुजी कहते हैं, 'ए, हुक्का कहाँ है? तू जा घर अपने, बेकार का है, कुछ काम नहीं करता है।' चेला कहता है, 'नहीं गुरुजी, माफ कर दीजिए।'

बारह साल तक चेला यही करता रहा, विषाद के परिणाम से बच गया। कैसे बचा? निष्काम कर्म करने के कारण। वह अपने लिए थोड़े ही करता था। गुरुजी ने कहा, इसलिए कर दिया। अगर गुरुजी कहते कि नहीं, उतना काम मत करो, तो नहीं करता। निष्काम कर्म का मतलब होता है, दूसरे की इच्छा से कर्म करना, अपनी इच्छा से नहीं। यह गीता के निष्काम कर्म का रहस्य बतला रहा हूँ।

अब अपने बारे में बोलता हूँ। हमारे पास एक हजार एकड़ जमीन थी, दो हजार एकड़ जंगल था। जंगल से भी पैसा मिलता था। हमारे दादा ने जागीर भी ली थी, बहुत मेहनत करते थे, बहुत पैसा निकलवाते थे। पर हम को ऐसा लगा कि सब बेकार है, सब छोड़-छाड़ कर ऋषिकेश आ गए। गुरुजी ने कहा, 'ठीक है, हमारी खातिर करो।' हमारे गुरुजी की बीबी-बच्चे नहीं थे, हुक्का तो क्या वे चाय-कॉफी तक नहीं पीते थे, मिर्ची भी नहीं खाते थे। सिद्ध महात्मा थे, एम.बी.बी.एस. डॉक्टर भी थे। अंग्रेज़ी में खूब लिखते थे, जिसे हम अनुवाद और टाइप करते थे।

गुरुजी कहते, 'जाओ, लाहौर में जाकर छाप कर लाओ', तो जाकर छाप देते थे। बेचो, तो बेच देते थे। देहरादून जाकर बैंक में पैसा जमा करो, तो जमा कर देते थे। नगर निगम में जाकर सीमेन्ट और चीनी के लिए परमिट लाओ, तो हम वह भी कर देते थे। हमारा यही काम था। दुनिया में भाई, बाप, बेटा क्या है, हम सब भूल गए। गुरुजी का चेक देहरादून में जमा करना है, छब्बीस मील दूर है, कैसे जाएँगे? कितने बजे गाड़ी आएगी? उसी में दिमाग उलझा रहता था, बारह साल तक यही किया।

एक दिन हमने गुरुजी से कहा, 'महाराज, अगर हमें काम ही करना है, तो घर में जाकर क्यों न करें?' तब गुरुजी ने कहा, 'देखो, वहाँ और यहाँ में बहुत फर्क है। घर में तुम अपने लिए करते हो, वहाँ का पुरस्कार तुम्हें मिलता है, यहाँ का पुरस्कार मुझे, तुम्हें नहीं।' कर्म का पुरस्कार क्या है? आसक्ति और प्राप्ति। यह समझकर मैं फिर वहाँ टिक गया। कई साल बाद उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम बहुत अच्छा बोलते, लिखते और समझाते हो, तुम जाकर योग सिखाओ।' सन् 1956 में मुझे 108 रुपये देकर उन्होंने विदा कर दिया। अभी भी मेरे पास 1956 के वे 108 रुपये रखे हैं। हमने 1984 तक योग सिखलाया। उसके बाद हमने कहा, बस, हमको और सिखाना नहीं है।

बात हो रही थी विषाद की। यह बात हमेशा याद रखना कि विषाद ऐसी अवस्था है जो हर व्यक्ति के जीवन में आती है और विशेषकर उनके जो ऊँची संस्कृतियों से जुड़े रहते हैं। निष्काम कर्मयोग द्वारा उस अवस्था को सहजता से सँभाला जा सकता है।

एक महावत अपने हाथी को गंगा तट पर ले गया और वहाँ उसे साबुन लगा-लगाकर, अच्छे से रगड़-रगड़कर नहलाया। एक घण्टे बाद महावत अपनी मेहनत से सन्तुष्ट था। हाथी पर सवार होकर उसे पानी से निकाला। जैसे ही हाथी तट पर पहुँचा उसने अपनी सूँढ से ढेर सारी मिट्टी उठायी और अपने पूरे शरीर पर मल दी। महावत को एहसास हुआ कि उसकी सारी मेहनत बर्बाद गई। वह हाथी को जंगल ले गया और उससे पेड़ों के बड़े-बड़े तने उठवाए। इस दिशा में महावत की मेहनत बिल्कुल बेकार नहीं गई। वह समझ गया कि हाथी इसी लायक था। उसे नहलाने में समय बर्बाद करने से उससे काम निकालना ही बेहतर था।

अनेक दुगुर्णों से युक्त तामसिक मनुष्य की तुलना हाथी से की जा सकती है। महावत संत-स्वभाव वाला गुरु है। वह तामसिक मनुष्य को शास्त्र रूपी साबुन से साफ करता है, उसे जप-कीर्तन रूपी जल से नहलाता है। लेकिन मौका मिलते ही तामसिक मनुष्य अपने ऊपर कीचड़ उड़ेल देता है। संत ऐसे मनुष्य का स्वभाव समझता है। वह उससे कठिन मेहनत करवाता है, खूब उपयोगी काम निकलवाता है। अंतत: कर्म द्वारा उस मनुष्य का शुद्धिकरण हो जाता है।

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

शिव पुराण में नवधा भक्ति का स्वरूप

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

शिव पुराण में एक प्रसंग आता है जिसमें माता सती भगवान शिव से प्रश्न करती हैं, 'क्या संसार में ऐसा कोई कर्म या अनुष्ठान है, जिसको करने से मनुष्य अपने दु:खों, संघर्षों, अशान्ति और संसार बंधन से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर ले?' शिवजी कहते हैं, 'वह कर्म ऐसा होना चाहिए जिससे ज्ञान प्राप्ति हो कि मैं ब्रह्म हूँ। मुझमें ब्रह्मत्व है, ईशत्व है, परम तत्त्व है, यह बोध होना चाहिए।' जो व्यक्ति सृष्टि में आता है, उसका मूल कर्म यही है–अपने भीतर ईश्वरत्व की खोज। जन्म लेने का प्रयोजन यही है।

अमरकोष में संसार की व्याख्या की गई है, '*संसरति इति संसार:*'–जो सरकता रहता है, सर्प की भाँति रेंगता रहता है, वह संसार है। संसार में विषयों का, इन्द्रियों का व्यापार है, इससे अधिक कुछ नहीं है। इन्द्रियाँ और उनके जो गुण हैं–शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध, जीवन में हम इन्हीं का व्यापार करते हैं। इनके ही बल पर सुख भोग की कामना करते हैं। अच्छा सुनना चाहते हैं, उससे सुख मिलता है। बुरा सुनने से दु:ख होता है। अच्छा देखना चाहते हैं, उसमें आनन्द आता है। बुरा देखने से मन विचलित हो जाता है। हर व्यक्ति इन्द्रिय विषयों को प्राप्त करना चाहता है, चाहे जिस रूप में हो–पदार्थ रूप में, भाव रूप में या विचार रूप में। यह सब करते हुए भी एक प्रयास करना चाहिए जिससे मालूम पड़े कि तुम्हारे भीतर परमात्म तत्त्व है।

सती पूछती हैं कि वह कौन-सा कर्म है, अनुष्ठान है, जिससे मालूम पड़े कि मनुष्य के भीतर वह अनंत ईश्वरीय तत्त्व है। शिवजी कहते हैं कि उस अनुष्ठान को 'भक्ति' कहते हैं। भक्ति ही वह कर्म है जिसके द्वारा तुम अपने भीतर स्थित ईश्वर को प्राप्त कर सकते हो, किन्तु उस भक्ति का सम्बन्ध ज्ञान से होना चाहिए। भक्ति ज्ञान की पूर्णाहुति है। अगर ज्ञान की पूर्णाहुति भक्ति में न हो, तो वह ज्ञान अधूरा है और वह भक्ति भी अधूरी है। अगर भक्ति और ज्ञान साथ न हों, तो भक्ति का रूप सकाम होता है। अपनी इच्छा पूर्ति के लिए मनुष्य भक्ति करता है। लेकिन जब भक्ति में ज्ञान शामिल हो जाता है तब मनुष्य अपने सभी कर्मों को करते हुए भी ईश्वर को अर्पित कर देता है और स्वयं फल की कामना नहीं करता।

ज्ञान और भक्ति, ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे के अभिन्न अंग हैं। ज्ञान होता है कि मैं वह हूँ, *सोऽहम्*। जब इस प्रकार का ज्ञान होता है कि ईश्वर मुझमें है, मैं ईश्वर में हूँ, यह जगत् ईश्वरमय है, ईश्वर जगत् में

समाहित है, जब चारों तरफ ईशत्व का बोध और अनुभव करते हैं, तब वह ज्ञान की स्थिति होती है, जो भक्ति में परिणत हो जाती है। भक्ति ज्ञान की सर्वोच्च उपलब्धि है।

शिवजी ने भक्ति के नौ अंगों, नौ स्वरूपों को समझाया है। नवधा भक्ति में प्रथम है श्रवण, दूसरा है कीर्तन, तीसरा है स्मरण, चौथा है सेवन, पाँचवाँ है दास्य, छठा है अर्चन, सातवाँ है वंदन, आठवाँ है साख्य और नौंवा है आत्मनिवेदन या आत्मसमर्पण।

श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा।
दास्यं तथार्चनं देवि वन्दनं मम सर्वदा॥
सख्यमात्मार्पणं चेति नवांगानि विदुर्बुधाः।

श्रवण

भक्ति के जो नौ स्वरूप बतलाये गये हैं, उनमें से अगर पहले स्वरूप श्रवण को ही देखा जाय, तो वह मन को एकाग्र करने की प्रक्रिया है। कोलाहल चारों तरफ हो रहा है, शोरगुल चारों तरफ है, लेकिन आप मेरी बात पर ध्यान दे रहे हैं, उसे सुन रहे हैं, उसको ग्रहण करने का प्रयास कर रहे हैं। वहाँ पर आपकी एकाग्रता है, ध्यान है, तन्मयता है। और अगर मन भटक जाए, शोरगुल में संलग्न हो जाए, तो आपकी एकाग्रता भंग हो जाती है और एकाग्रता भंग होने पर मेरी बातों को आप सुनेंगे नहीं। अतः श्रवण भी ध्यान की पद्धति है–अपने मन को एक विचार, एक बिन्दु या कथा के श्रवण में केन्द्रित करना।

कीर्तन

दूसरा स्वरूप है कीर्तन। कीर्तन का अर्थ होता है ईश्वर के नामों और गुणों को गाना। जब मन ईश्वर के नाम और गुण गाता है, तब जो भाव प्रकट होता है वह मनुष्य को अपने आराध्य के साथ जोड़ता है। नहीं तो कीर्तन और गाने में अंतर क्या है? लोग फिल्मी गाना गाते हैं, प्रेम गीत गाते हैं, लेकिन इन सब से भावना विकसित, शुद्ध और जाग्रत नहीं होती। मनोरंजन होता है, लेकिन मनोरंजन एक मानसिक अनुभूति है, भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं। जबकि कीर्तन एक भावनात्मक अभिव्यक्ति है, जिससे भावना शुद्ध एवं जाग्रत होती है। फिर वही भावना आपको अपने इष्ट या आराध्य के साथ जोड़ने में सहायक होती है। *जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखहिं तिन तैसी*। जिसका जैसा भाव होता है, वह ईश्वर को उस अनुरूप अनुभव करता है।

रामचरितमानस में कथा आती है कि जब श्रीराम सीता स्वयंवर में पहुँचे और उन्होंने स्वयंवर सभा में प्रवेश किया, तब वहाँ पर जितने लोग उपस्थित थे, वे राम को अनेक रूपों में देखते हैं–माताएँ उनको पुत्र रूप में देखती हैं, युवतियाँ उनको पति रूप में देखती हैं, राजा उनको सम्राट् रूप में देखते हैं, आततायी और राक्षस उनको काल रूप में देखते हैं, संत-महात्मा और विद्वान् उनको ज्योति रूप में देखते हैं। व्यक्ति एक है राम, लेकिन सभा में जितने लोग बैठे थे, सब राम को अपनी भावना के अनुसार देख रहे थे। इसीलिए भक्ति शास्त्र में कीर्तन को महत्त्व दिया गया है। इसलिए नहीं कि आप भगवान का नाम गा रहे हैं, गुणगान कर रहे हैं, बल्कि इसलिए कि आप उनके द्वारा अपनी भावनाओं को जाग्रत कर, स्वयं को अपने आराध्य के साथ जोड़ रहे हैं। कीर्तन जीवन में एक सकारात्मक परिवर्तन लाने की प्रक्रिया है।

स्मरण

तीसरा स्वरूप है स्मरण। सामान्य रूप से होता यह है कि जब हम लोग किसी चीज को याद करना चाहते हैं, तब हमेशा उसको अपने सामने रखना चाहते हैं। भगवान के ध्यान का मतलब लगाते हैं कि भगवान के बारे में ही सोचते रहो दिनभर, चौबीस घण्टा। नहीं, स्मरण का मतलब कुछ और है। वह चीज जो मन में छा जाए, और हमेशा आपके साथ रहे। माँ अपने छोटे-से बच्चे को गोद में रखकर घर के समस्त कार्य करती है। बच्चा जमीन पर खेलता रहता है और माँ अपना काम करती रहती है–सब्जी काटती है, आग जलाती है, खाना बनाती है, रोटी बेलती है, रोटी पकाती है, सब कार्य करती है। शिशु की देखभाल के लिए वह घर के कार्यों को अनदेखा नहीं करती। लेकिन सभी कार्यों को करते हुए भी माँ एक नजर अपने बच्चे पर हमेशा रखती है, उसके मन का एक अंश हमेशा अपनी संतान के साथ जुड़ा रहता है। बच्चा अगर चाकू उठा लेता है तब माँ अपने सभी कामों को रोककर बच्चे के पास जाती है, उसके हाथ से चाकू हटाकर बच्चे को फिर से सुरक्षित कर देती है और पुन: अपने कार्य में संलग्न हो जाती है।

अपनी संतान के प्रति एक माँ के भीतर जैसी सजगता सतत् बनी रहती है, वैसी ही सजगता अगर एक भक्त के मन में अपने ईश्वर के प्रति सतत् बनी रहे, तो ध्यान, साधना और सत्संग की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह स्मरण, वह सजगता मनुष्य के भीतर ईश्वर के प्रति अनुराग पैदा करती है। वह सजगता ही मनुष्य को ईश्वर से जोड़ती है।

पाद सेवन

चौथा अंग है पाद सेवन। भगवान कभी अपने पैर दबाने के लिए, अपने पैरों की सेवा करने के लिए नहीं कहते। यहाँ पर पैरों की सेवा का अर्थ है, उनके चरण चिह्नों पर चलना और अपने अभिमान को नियंत्रण में रखना। जिस व्यक्ति का ध्यान हमेशा प्रभु के चरणों में रहता है और उन्हीं के चरणों में वह अपनी श्रद्धा अर्पित करता है, उसके जीवन में अभिमान का स्थान हो ही नहीं सकता। यही भाव श्रीमद्भगवत गीता में आया है कि तुम जो कुछ करो, मुझे अर्पित करते जाओ। अर्पित करने का अर्थ ही होता है, स्वयं को घमण्डरहित और विनम्र बनाना। जब व्यक्ति विनम्र हो जाता है, उसके भीतर घमण्ड का कोई स्थान नहीं रहता, तब उसकी चेतना का विकास होता है।

जिस मार्ग पर चलने का गुरु जी ने तुमको आदेश दिया है, उस मार्ग पर तुम अभिमान रहित होकर चलो। हृदय में सरल भाव को धारण करके, विश्वास को धारण करके कि अगर इस मार्ग पर मैं चलूँगा तो मेरा हित होगा। श्रद्धा-विश्वास से युक्त होकर अभिमान का त्याग करो और गुरु जी के निर्देश के अनुसार चलते

रहो, चलते रहो, चलते रहो। गुरु-शिक्षा का आचरण करो। यही 'पाद सेवन' का वास्तविक अर्थ है।

दास्य

पाँचवाँ है दास्य भाव। भक्ति में अनेक प्रकार के भाव होते हैं, जिनके माध्यम से आप अपने आराध्य के अनुभवों को सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं। उनमें से एक दास्य भाव है। कभी-कभी भक्ति में मनुष्य को आभास होने लगता है कि मैं तो नौकर हूँ। मेरे मालिक ने जो निर्देश दिया है, उसका पालन कर रहा हूँ। परिणाम की चिन्ता नहीं रहती। यह दास्य-भाव है।

बिना भाव के भक्ति नहीं हो सकती। भाव ही अपने आराध्य के साथ हमारे सम्बन्ध को दर्शाता है। हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि मैं भगवान का सेवक हूँ, दास हूँ। वह जैसा कराता है, मैं करता हूँ। हमारे गुरु स्वामी सत्यानन्द जी के शब्दों में, 'मैंने बहुत प्रकार के सम्बन्धों को आजमाया। सोचा कि ईश्वर मेरे सखा हैं, लेकिन उसमें मुझे सुख नहीं मिला। सोचा कि ईश्वर मेरी सन्तान है, लेकिन उसमें भी मुझे आनन्द की प्राप्ति नहीं हुई। सोचा, मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ, उसमें भी मुझे आनन्द की अनुभूति नहीं हुई। मुझे आनन्द की अनुभूति तब हुई जब मुझे मालूम पड़ गया कि मैं ईश्वर का दास हूँ। और वही दास भावना लेकर मैं आज जीता हूँ।'

मनुष्य की भावना ही उसके सम्बन्धों को स्थापित करती है। स्वामी सत्यानन्द जी हमेशा लोगों से यह कहते थे कि तुम निर्णय लो कि तुम्हारा ईश्वर के साथ

क्या सम्बन्ध होना चाहिए। भक्त और भगवान का सम्बन्ध तो बहुत व्यापक है। जब तक तुम्हारे भीतर एक ऐसा भाव स्थापित नहीं होता जिससे तुम उनके साथ अपने सम्बन्ध को पहचान पाओ, तब तक तुम सही रूप में भक्त नहीं बन सकते। जिस दिन भावों के कारण सम्बन्ध को पहचान लोगे, सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा, तुम भक्त बन जाओगे।

भक्ति मार्ग में जो सम्बन्ध बताए गए हैं, उनमें पहले दो हैं शान्त भाव और दास्य भाव। जब तक मनुष्य का चित्त चंचल है, वह ईश्वर या ईश्वर के प्रतीक पर केन्द्रित नहीं हो पायेगा। इसलिए आराधना के पहले अपने आपको शान्त करो। फिर अपने मन में यह विचार लाओ कि मैं तो परमात्मा का सेवक मात्र हूँ। भक्ति शास्त्र में कहा गया कि ये दो भाव ऐसे व्यक्तियों के लिए हैं जो भक्ति मार्ग में अपनी यात्रा आरम्भ कर रहे हैं।

हम योग, अनुष्ठान, मन्त्र पाठ आदि करते हैं। शुरुआत कैसे होती है? सबसे पहले शरीर को शान्त करते हैं, इन्द्रियों की हलचल को शान्त करते हैं, मन की चंचलता को स्थिर करते हैं न? कहते हैं कि एक प्रतीक पर मन को एकाग्र करो, उसके बाद ही अभ्यास क्रम आरम्भ होता है। अत: पहले है शारीरिक स्थिरता, उसके बाद मानसिक स्थिरता, और उसके बाद अभ्यास क्रम। यह योग की विधि है। इसी प्रकार जब भक्ति करने बैठते हो, तब संसार के विषयों से मन को हटाकर शान्त भाव में स्थित करो। तुम्हारे और तुम्हारे आराध्य के अतिरिक्त संसार में कोई नहीं, और चित्त को विचलित होने का अन्य कारण भी नहीं। फिर मन में इस भाव को ले आओ कि मैं सेवक हूँ। इसी भाव से व्यक्ति अपनी भक्ति मार्ग की यात्रा प्रारम्भ करता है।

अर्चन

भक्ति का छठा अंग है अर्चन, अपने कर्म ईश्वर को अर्पित करना। कर्म को समर्पित करना कैसे सम्भव है? प्रत्येक प्राणी कर्म के अधीन जीता है, कर्म भोग प्राप्त करता है। कर्म तथा कर्मभोग को अर्पित करना, उनसे अपना कोई नाता न रखना बहुत कठिन है। कर्म अर्पित करने का जब निर्देश दिया जाता है, तब उस समय सामान्य विचारधारा के अनुसार हम लोग यह अर्थ लगाते हैं कि मैं जो कर्म कर रहा हूँ, उसके प्रेरक ईश्वर हैं और ईश्वर ही मुझे माध्यम बनाकर मुझसे सब करवा रहे हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर कहा जाता है, *'नाहं कर्ता, हरि: कर्ता, हरि: कर्ता हि केवलम्'*। पर यह भाव बौद्धिक स्तर तक ही सीमित रहता है, जिसका आध्यात्मिक जगत् में कोई महत्त्व नहीं होता। इस भाव को रखकर भी हम कर्म से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर पाते तो यह हमारे खोखलेपन का सूचक है। यदि व्यक्ति कर्म और कर्मभोग के साथ अपने सभी सम्बन्धों को तोड़ दे, तब यह कहना यथार्थ होगा कि मैं कर्ता नहीं हूँ, प्रभु ही कर्ता हैं। हमारे समस्त

कर्म, चाहे वे बाह्य हों या आन्तरिक, केवल इन्द्रिय अभिव्यक्ति का माध्यम बनें और कुछ नहीं। कर्मों को अर्पित करने का मतलब एक तरह से यह भी होता है कि अपनी शुद्ध चेतना, शुद्ध बुद्धि और शुद्ध मन ईश्वर को अर्पित करना। जब कर्म इन्द्रिय अभिव्यक्ति के माध्यम मात्र हो जाते हैं और चेतना की व्यापकता में किसी प्रकार के विकार उत्पन्न नहीं करते, तब उस समय चेतना विकाररहित, परिमार्जित, पवित्र और शुद्ध होती है। वही चेतना फिर ईश्वर को अर्पित की जाती है कि 'यह तुम्हारी है, तुम ले लो।'

कर्म तथा कर्तृत्व भाव के त्याग में स्वार्थ तथा बन्धन नहीं रहते। मैं जो कर रहा हूँ, वह ईश्वर को समर्पित है और बहुजन हिताय है। जब यह भावना जाग्रत एवं प्रबल हो जाती है, तब व्यक्ति कर्म बन्धन में नहीं पड़ता। कर्मों के साथ जीव का सम्बन्ध टूट जाता है और प्रभु स्मरण सतत् होने लगता है। वह सतत् स्मरण ही अन्य कर्मों को परिमार्जित करता है।

वन्दन

सातवाँ अंग है वन्दन, भगवान के सामने अपने अहंकार को झुकाना। वन्दन का अर्थ होता है, अपने आदर्श की तरह अपने जीवन को बिताने का प्रयत्न करना। यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति को देखते हैं जो आपको अच्छा लगता है, तो उसके स्वभाव और विचारधारा को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं। इसे कहते हैं 'वन्दन'। दूसरे व्यक्ति के गुण को अपने में उतारो और उतारते समय कपट के भाव को अपने भीतर मत रखो। यदि कपट हो जाय तो वह आडम्बर है और भक्ति में आडम्बर का कोई स्थान नहीं है। लेकिन यदि आप सचमुच किसी आदर्श या गुण को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते हैं, तो वह आपके व्यक्तित्व को अवश्य बदलेगा। यह साधना का परिणाम होता है। इसका स्थूल रूप है, ईश्वर की सर्व-व्यापकता के भाव में अपने को रमा देने के लिए उनका वन्दन करना और छल, कपट, आडम्बर इत्यादि का त्याग करना।

सख्य

आठवाँ है, सखा भाव। मैं ईश्वर का सखा हूँ, मित्र हूँ, खेल रहा हूँ अपने प्रभु के साथ। सख्य भाव के उदाहरण हैं, सुदामा और कृष्ण या सुग्रीव और राम, जिन्होंने अग्नि के समक्ष मित्रता की। जब दो व्यक्तियों का आपसी सम्बन्ध घनिष्ठ होता है, तब सख्य भाव आता है। अगर आपसी सम्बन्ध घनिष्ठ नहीं है, तो वैसा भाव नहीं आएगा। इसलिए सख्य भाव सम्बन्ध की घनिष्ठता को दर्शाता है।

सख्य भाव से श्रद्धा विकसित होती है। अपने आराध्य के साथ जो सम्बन्ध बनता है, उसमें कलुषता नहीं होती। मित्रता का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ होता है।

आप देखते होंगे कि बच्चे अन्य बच्चों की बात को जल्दी स्वीकार करते हैं, बड़ों की बात को नहीं, क्योंकि मित्र हैं। दोस्ती में चीजें अधिक और जल्दी स्वीकार्य होती हैं, लेकिन जहाँ मित्रता नहीं है, वहाँ किसी विचार को स्वीकार करने में बहुत परेशानी होती है, और मन में आलोचना-प्रतिआलोचना का कार्य आरम्भ हो जाता है।

आत्मार्पण

नौवां और अंतिम स्वरूप है आत्मार्पण। भारतीय मनीषियों ने जीवन को इस संसार सागर में एक नौका के रूप में देखा है, जिसकी दो पतवारें हैं, मन एवं बुद्धि। जन्म से मृत्युपर्यन्त मनुष्य जीवन को इन दो पतवारों के माध्यम से खेता है। आध्यात्मिक जगत् में समर्पण के दौरान जीव अपनी पतवारों को ईश्वर को सौंप देता है, ताकि ईश्वर ही जीवन रूपी नैया को आगे ले जाए। उसके जीवन में यह भावना अवतरित होती है, *'अब तो दी है नैया नदी में बहा, जा लगी जिस किनारे चले जायेंगे'*। अर्पण करने के लिए अपने भीतर सामर्थ्य और शक्ति होनी आवश्यक है। मात्र यह सोचना कि मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ, तुम्हें अपना सर्वस्व देता हूँ, अर्पण की व्याख्या नहीं है। जब तक समान भाव को जाग्रत नहीं किया जाता, उस प्रकार के कर्म नहीं किये जाते, मानसिकता में उस प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, तब तक यह धारणा मात्र बौद्धिक रहती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए भक्ति और कर्म का ठोस आधार होना आवश्यक है। भक्ति और कर्म दो व्रत या संकल्प होते हैं। जो इन्हें अपने जीवन में प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करता है, सिद्ध कहलाता है।

एक बार राधा श्रीकृष्ण से प्रश्न करती हैं कि आपको अपनी मुरली बहुत पसन्द है, हमेशा उसको अपने होठों से लगाए रखते हैं, क्या रहस्य है कि यह मुरली आपको इतनी पसन्द है। कृष्ण जी कहते हैं, मुझे मुरली इसलिए पसन्द है कि वह अन्दर से खाली है। जो खाली है, उसे मैं जिस रंग में चाहूँ, जिस रूप में चाहूँ, भर सकता हूँ। अपने को खाली करना, वासनाओं और स्वार्थ से मुक्त करना, घृणित कर्मों से मुक्त करना, यह मनुष्य का प्रयास होना चाहिए।

भक्ति द्वारा जीवन में सकारात्मक परिवर्तन

भक्ति के जिन नौ प्रकारों का वर्णन यहाँ पर आदिगुरु भगवान शिव ने जगत् जननी माँ सती को किया है, उन्हें केवल एक आराधना के रूप में नहीं, बल्कि जीवन

में एक सकारात्मक परिवर्तन लाने की एक पद्धति के रूप में समझाया है, जिसमें ध्यान, ज्ञान और भक्ति, तीनों का समावेश होता है।

अभी आप जो श्रवण कर रहे हैं, उसमें ध्यान भी हो रहा है, यह भक्ति का प्रथम चरण है। आपका मन एक विषय को पकड़कर चल रहा है। आपका मन मेरी वाणी पर केन्द्रित है। यह कोई जरूरी नहीं कि ध्यान करने के लिए आँखों को बन्द करके बैठा जाए। ध्यान का मतलब होता है अपने मन को प्रक्रिया से जोड़ देना और प्रयास करना कि मन उस सम्बन्ध को तोड़े नहीं। अगर एकाग्रता है तो आँखें खुली रहें या बन्द, कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारे गुरु स्वामी सत्यानन्द जी कहते थे कि हिमालय में लोग शान्ति के लिए जाते हैं, लेकिन याद रखना कि हिमालय में शान्ति नहीं है। लोग कहते हैं कि विश्व में हल्ला बहुत है, कोलाहल है, लेकिन याद रखना विश्व में कहीं कोलाहल नहीं होता है। जो कुछ होता है, वह तुम्हारे भीतर होता है। तुम ही अपनी मानसिक अवस्था के आधार पर निर्णय लेते हो कि यहाँ पर शान्ति है तो वहाँ पर अशान्ति। अगर तुम अपने मन को नियंत्रण में रख सकते हो तो बाजार के बीच में बैठ जाओ, तुम कोलाहल से विचलित नहीं होगे, तुम्हारा मन एकाग्रचित्त रहेगा। लेकिन अगर तुम अपने मन को नियंत्रित नहीं रख सकते हो तो भले ही हिमालय की किसी गुफा में बैठ जाओ, तुम्हारी वासनाएँ और कामनाएँ वहाँ भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगी और तुम्हें अशान्त किये रहेंगी।

साधक का लक्षण होता है हर परिस्थिति में अपने मन को अपने नियंत्रण में रखना। श्रीकृष्ण ने यही उपदेश गीता में दिया है, *'योगिन: कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये'*–योगी आसक्तिरहित होकर आत्मशुद्धि के लिए कर्म करता है, और जो आसक्ति में बँधा है,*'सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा, समत्वं योग उच्यते'*–उसे प्रयास करना है कि वह सिद्धि या असिद्धि में भी समभाव धारण करे, यह समत्व ही सर्वोच्च योग है। यह समत्व आता कब है? जब मन केन्द्रित होता है तब। चंचल मन में समत्व कहाँ से आयेगा! भक्ति की प्रक्रिया ध्यान की प्रक्रिया है, ज्ञान की प्रक्रिया है और आराधना की प्रक्रिया है। इन तीनों का समावेश एक विधि में हुआ है।

एक माता घर में जब कार्य कर रही होती है, उस समय भी उसका ध्यान अपनी संतान पर केन्द्रित रहता है। सतत् स्मरण, सतत् ख्याल बना रहता है। क्या वही तुम अपने आराध्य के साथ, अपने इष्ट के साथ कर पाओगे? पाँच मिनट उनका नाम लेने में खटिया खड़ी हो जाती है, मन कभी यहाँ भागता है, कभी वहाँ भागता है, कभी दूध का ख्याल आता है, कभी जूते का ख्याल आता है। पाँच मिनट के लिए भी मन स्थिर रहता नहीं। हम अपने साथ जबरदस्ती करते हैं। हमारे अभ्यास में सहजता नहीं है। भक्ति में सहजता है, इसलिए उसे प्राथमिकता दी गयी है। भक्ति के द्वारा ही अपने भीतर स्थित उस आत्मतत्त्व को जाना जा सकता है।

सत्यम् वाणी

मंदिरों में भगवान के लिए पूजा-पाठ क्यों किया जाता है? जब संसार की सब चीजें भगवान की ही हैं, तो पूजा में उन्हें फल-फूल चढ़ाने की क्या जरूरत?

इस तरह से तो हर बेटे को चाहिये कि अपने बाप की सेवा करे ही नहीं। बस कह दे, 'पिताजी मैं आपको क्या दूँ, सब तो आपका ही दिया हुआ है,' और सब कुछ अपनी जेब में रख ले। असली बात यह है कि भगवान को जो फूल आप देते हो, अगर देना बन्द कर दोगे तो बहुत-से घरों में चूल्हा नहीं जलेगा। आप व्यावहारिकता को क्यों नहीं देखते? अगर आदर्शवादी दर्शन पर चलोगे तो आधे लोगों का पेट कट जाएगा। 'भगवान को पेड़ा क्यों चढ़ायेंगे? उनको धूप-दीप क्यों दिखायेंगे? शिवजी के ऊपर क्यों दूध चढ़ायेंगे?' ऐसा सोचोगे तब तो मुश्किल है। कितने लोगों के घर में चूल्हा ही नहीं जलेगा। भगवान के बहाने कम-से-कम लाखों आदमियों का पेट तो भरता है न।

दुनिया में यह भी यथार्थ है। इस यथार्थ को कभी भी नजरअंदाज नहीं करना है। आखिर ईसाई धर्म में कितनी मोमबत्ती जलती है? इतनी जलती है कि वहाँ मोमबत्तियों के लिये ढेर सारे लघु उद्योग हैं। वहाँ सब लोग मोमबत्तियाँ बनाना जानते हैं। सब गिरजाघरों और ईसाई मठों के लोग बनाना जानते हैं। अगर यह कहो कि ईसामसीह को मोमबत्ती की क्या जरूरत है तो सारा मोमबत्ती उद्योग चौपट हो जाएगा। इसी तरह यहाँ तुम्हारा पेड़ा उद्योग ठप्प हो जाएगा, तुम्हारे फूल बेचने वाले बेकार हो जाएँगे। हिन्दुस्तान में फूलों की जितनी बिक्री होती है, वह मुख्य रूप से तो धर्म के आधार पर होती है न? अगर तुम इस सिद्धान्त पर बन्द कर दोगे कि भगवान पर फूल मत चढ़ाओ, तो सब भूखे मरेंगे।

बचपन में हमको भी यह बात समझ में नहीं आती थी, पर अब समझ में आती है। जितनी भी चीजें भगवान के नाम पर चढ़ाते हैं, अगर उन्हें खत्म कर दिया जाए तो भगवान बहुत शुष्क यथार्थ बनकर रह जाएँगे, बिना चीनी के हलुवे की तरह। ठीक है तुम्हें पसंद हो सकता है लेकिन हम तो भाई नहीं खायेंगे। हमें तो चीनी वाला हलुवा चाहिये। दुनिया के आधे उद्योग-धन्धे भगवान पर निर्भर करते हैं। अगर लोग आप की बात सुनना शुरू कर दें कि भगवान को जल नहीं चाहिये, भगवान को तुम्हारे दर्शन की क्या आवश्यकता है, वह तो तुम्हारे अन्दर है, भगवान की पूजा क्यों करे, भगवान को पूजा का शौक है क्या? तब तो व्यापार ठप्प, चूल्हा ठप्प, बैंकों की आमदनी ठप्प। और अगर यही मानते हो कि मन्दिर-तीर्थ जाकर क्या करेंगे, भगवान तो यहाँ भी हैं, घुसलखाने में भी हैं, तो ठीक है जाओ वहाँ।

जिस कर्म से मनुष्य का पेट भरे, अगर वह गुनाह न हो तो जरूर करो। भगवान के नाम पर भी गुनाह नहीं होना चाहिये, कोई सामाजिक अपराध नहीं होना चाहिए। भगवान को चाहे फूल चढ़ाओ, अगरबत्ती दिखाओ, पेड़ा चढ़ाओ, कुछ भी चढ़ाओ कम-से-कम दो आदमियों का पेट भरेगा। नहीं तो बहुत मुश्किल हो जायेगी, दुनिया के पाँच अरब लोगों में तीन अरब लोग भूखे मर जायेंगे। दुनिया के पेट भरने का आधार भगवान ही है।

यह तो मैंने व्यावहारिक बात बताई। अगर फिर भी अपनी विचारधारा पकड़े रहते हो तब तो आपको बहुत-सी चीजें छोड़नी पड़ेंगी। सबसे पहले तो शादी मत करो। बिना शादी औरत को घर में रखो, क्या फर्क पड़ता है? अपना बेटा क्या बनाना, किसी का भी बेटा पकड़ लीजिये। दुनिया में जो सामाजिक या आध्यात्मिक सिद्धान्त हैं वे मनुष्य की भावना पर आधारित होते हैं। तुम शादी करते हो, सामाजिक स्वीकृति लेते हो न? क्या उसके बिना स्त्री-पुरुष से बच्चा पैदा नहीं हो सकता? हो सकता है मगर हमारी भावना इसको स्वीकार नहीं करेगी। मनुष्य के कर्म का आधार है भावना, और भावना में दो बातें हैं, पाप और पुण्य। पाप-पुण्य की भावना सबके मन में है, कोई मनुष्य उससे मुक्त नहीं है।

भगवान को फूल चढ़ाना, पूजा करना, आरती करना, यह करना, वह नहीं करना–यह सब मनुष्य की भावनाओं के नियम पर आधारित है। मनुष्य ने अपने लिए एक भावनात्मक जीवन का निर्माण किया है। अच्छा लगता है, इसलिए करता है। हमारे रघुनाथ जी को देखो न, हमने उनको कम्बल पहनाया है। सीताजी को भी पहनाया है। ठण्ढी हो गई थी न अभी, तापमान गिर गया था तो हमने सत्संगी को बोला सर्दी लग जायेगी, पहना दो। हमें अच्छा लगता है। सब हँसने लगे जब

हमने कहा भगवान को सर्दी लग जाएगी। हमने कहा, कम-से-कम हँसे तो। जहाँ खुशी हो, जहाँ मुस्कान हो, जहाँ आनन्द हो, वहाँ भगवान है। भगवान के साथ दार्शनिक सम्बन्ध रखना गलत है। अगर भगवान के साथ दार्शनिक सम्बन्ध रखना है तो अपनी बीवी के साथ भी रखना, अपने बाप के साथ भी रखना! पूजा-पाठ करना जीवन में बहुत अच्छी चीज है, अच्छा लगना चाहिये बस। तीर्थ-व्रत करना, हिमालय चढ़ना, बद्रीनाथ जाना, वैष्णव देवी जाना, गुरु-जनों के पास जाना, कीर्तन-भजन करना, यह सब अच्छी चीज है।

नाथ सम्प्रदाय

जो महिलाएँ दशनामी संन्यास में दीक्षित होती हैं उनको बोलते हैं संन्यासिनी। अब वह संन्यासिनी चाहे वेदांत मत को माने या योग मत को माने या भक्ति को माने, वह संन्यासिनी है। उसको योगिनी नहीं कहते हैं, क्योंकि योगिनी एक सम्प्रदाय है हम लोगों के यहाँ। योगिनी जो होती है वह नाथ सम्प्रदाय में होती है। नाथ सम्प्रदाय गुरु गोरखनाथ जी का चलाया हुआ एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय है, जिसे कनफटा योगी भी कहते हैं। उनकी जो दीक्षा होती है उसमें कान फाड़ कर कुण्डल डालते हैं। उनमें जाति, धर्म वगैरह का ख्याल नहीं रखते हैं। विवाहित, अविवाहित, ब्रह्मचारी कोई भी दीक्षा ले सकता है। आदमी कसाई का काम करता है या मोची का काम करता है, ये फर्क भी वे लोग नहीं रखते हैं। तुमने देखा होगा, लोग रास्ते में साँप को नचाते हैं या बन्दर को नचाते हैं, गेरू कुर्ता पहनते हैं, सफेद धोती पहनते हैं, पगड़ी बाँधते हैं, वे उस सम्प्रदाय के होते हैं। उनकी यही पहचान है कि वे एक झोला रखते हैं, झोले में भस्म रहती है, एक माला रहती है और थोड़ा-सा गाँजा लेते हैं। वह उनकी दीक्षा हो गई।

यह बहुत बड़ा सम्प्रदाय है। अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान तक फैला बहुत तगड़ा सम्प्रदाय है। जैसे सिक्खों में गुरुओं को बहुत मानते हैं वैसे नाथ सम्प्रदाय में भी। मत्स्येन्द्रनाथ, फिर गोरखनाथ, अनेकों नाम आते हैं उनकी गुरु परम्परा में। उनके नाम के आगे आनन्द नहीं लिखा जाता है, नाथ लिखा जाता है।

महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर नाम से एक महान् संत हुए हैं। ये पण्ढरपुर के पास आलन्दी नाम के गाँव में रहते थे। उनके पिताजी इनके जन्म से पहले घर छोड़कर बनारस चले गये थे और संन्यास ले लिया था। माँ घर में अकेली रह गई। फिर एक विचित्र संयोग हुआ। आलन्दी एक तीर्थस्थान है, वहाँ पति के गुरु चलते-चलते पहुँच गये। तो यह भी उनके दर्शन करने को पहुँची। उन्होंने *पुत्रवती भव* कहकर आशीर्वाद दे दिया। यह बोली कि मेरे पति तो चले गए हैं, फिर पुत्रवती कैसे बनूँगी? गुरुजी ने नाम पूछा और पता चला कि वह तो उनका ही चेला है। वे सीधे बनारस गये और उसको वापस भेजा। उसने घर लौटकर फिर गृहस्थाश्रम शुरू कर दिया।

उनके तीन पुत्र और एक पुत्री हुई। उनमें एक का नाम था ज्ञानेश्वर जो बहुत बड़े सिद्ध योगी हुए। छोटी उम्र में ही उन्होंने समाधि ले ली, आलन्दी के पास। महाराष्ट्र बहुत ही रूढ़िवादी प्रांत रहा है। वहाँ अभी भी बहुत छूआछूत और भेदभाव है। उस वक्त तो भयंकर था। वे लोग शास्त्रों को बहुत मानते हैं। जब इनके पिताजी वापस गये तो संन्यासी थे। शास्त्र कहता है जब संन्यासी वापस गृहस्थ हो जाता है तो वह चाण्डाल से भी नीच हो जाता है। ऐसे लोगों को समाज से परित्यक्त मानते हैं। संन्यासी जब शादी करके बच्चा पैदा करता है तो वह और उसकी जितनी भी संतानें होती हैं, शास्त्र के अनुसार बहिष्कृत मानी जाती हैं। इसलिए गाँव के लोगों ने उनको जाति से बहिष्कृत कर दिया।

अब ज्ञानेश्वर और उनके भाइयों को खाने तक की नौबत आ गई। घर-घर जाकर भीख माँगते थे, कोई खाना ही नहीं देता था। दरवाजा बन्द कर देते थे। किसी ने सुझाव दिया कि तुम पण्ढरपुर जाओ और शुद्धि कराओ। पण्ढरपुर जाकर वहाँ के पण्डितों से उन्होंने बोला। पण्डितों ने कहा, हमारे वेदों में तो ऐसा कुछ लिखा ही नहीं है कि बहिष्कृत की शुद्धि हो। संन्यास के बाद कोई शादी करे और उसका बच्चा हो, उसके शुद्धिकरण के बारे में हमारे यहाँ तो कुछ लिखा नहीं है। ज्ञानेश्वर ने कहा, 'वेदों में क्या रखा है। वेद तो कोई भी बोल सकता है, तुम भी बोल सकते हो, यह भी बोल सकता है, वह भी बोल सकता है।' उन्होंने कहा, 'यह भैंस भी बोल सकती है क्या?' ज्ञानेश्वर बोला, 'हाँ वह भी बोल सकती है, इसमें क्या रखा है।' ऐसा कहकर उन्होंने पास खड़ी भैंस की पीठ पर हाथ रखा। भैंस ने वेदपाठ शुरू कर दिया! पण्डित चकित हो गये और उनकी शुद्धि कर दी गई।

इन तीन भाइयों में जो सबसे बड़े भाई थे, निवृत्ति, उन्होंने नाथ पंथ में दीक्षा ली थी, और उन्होंने अपने बाकी भाइयों को दीक्षा दी थी। ज्ञानेश्वर के गुरु उनके बड़े भाई ही थे। 22 साल की उम्र में उन्होंने समाधि ली थी, और उनकी समाधि का भी बड़ा विचित्र वर्णन है। उस वक्त महाराष्ट्र में एक बड़ा योगी था, चाँगदेव। जैसे तुम लोग घोड़े, गधे या मोटरगाड़ी पर सवार होकर जाते हो, वह हमेशा शेर पर बैठकर जाता था। उसने सोचा ज्ञानेश्वर का बड़ा नाम है, एक बार उसको चुनौती दी जाए। तो चाँगदेव शेर पर बैठकर मिलने गया। उस वक्त ज्ञानेश्वर एक छोटी-सी दीवार पर बैठे थे। उन्होंने दीवार से कहा, 'बेटा, तुम भी सरको।' दिवार सरकती गई, चाँगदेव के तो होश गायब हो गये। फिर उसके बाद 22 साल की उम्र में ज्ञानेश्वर एक गुफा में चले गये, दरवाजा बन्द कर दिया और वहाँ उन्होंने समाधि ले ली। उनकी समाधि आलन्दी में है। लाखों मराठी वहाँ तीर्थ के लिये जाते हैं।

नाथ सम्प्रदाय की बात कर रहा था। नाथ सम्प्रदाय बहुत बड़ा सम्प्रदाय है जिसके बारे में आप लोगों को ज्यादा पता नहीं है। उस सम्प्रदाय में जो स्त्रियाँ होती हैं, उनको योगिनी कहा जाता है। जैसे वह जो सपेरा होता है उसकी पत्नी योगिनी

कही जाती है। वहाँ ऐसा नियम नहीं है कि दीक्षित व्यक्ति शादी न करे, या यह व्यवसाय न करे, वह व्यवसाय न करे। कोई भी व्यवसाय कर सकते हो। नाथ पंथ वाले को भीख नहीं माँगनी चाहिये, बस। कमाना है उसको, चाहे तो साँप नचाकर कमाए, चाहे बन्दर नचाकर कमाए। देखा है न तुमने सड़क किनारे ऐसे मदारियों को? ऊपर गेरू कुर्ता रहता है, नीचे सफेद धोती रहती है, माथे पर पगड़ी रहती है। ये नाथ सम्प्रदाय वाले हैं। उनके कानों में कुण्डल होते हैं। वे दीक्षित को एक समय पर दिये जाते हैं। पहले मिट्टी के कुण्डल डाले जाते हैं, फिर लकड़ी के कुण्डल डाले जाते हैं। कान के जिस स्थान पर छेद किया जाता है उसका सम्बन्ध मनुष्य की यौन नाड़ियों से है। यौन नाड़ियों का एक मुख्य केन्द्र है यहाँ। मनुष्य के अन्दर काम-वासना बहुत तीव्र होती है। हम लोगों के वैदिक धर्म में जो कर्ण छेदन किया जाता है, यह गहना लगाने के लिये नहीं किया जाता है, इसका प्रयोजन यौन नाड़ियों का नियंत्रण है। औरतों के कानों में बाली लगाते हैं, लड़कों का भी कर्ण छेदन होता है, सभी जगह होता था पर अभी लोगों ने छोड़ दिया है, क्योंकि अंग्रेज लोग कहते हैं मत करो। आपकी आधुनिक सभ्यता कहती है मत करो, पर वास्तव में कर्ण छेदन का सम्बन्ध कान में स्थित यौन नाड़ी से है।

आपको शायद एक विज्ञान का नाम मालूम होगा जिसे कहते हैं एक्यूपंक्चर। यह चीन-जापान की विद्या है। इसमें सुई को शरीर में मार-मार करके यहाँ-वहाँ

लगाते हैं। एक्यूपंक्चर का मूल सिद्धांत यही है कि मनुष्य शरीर में हर जगह पर संवेदनात्मक नाड़ियों के केन्द्रबिन्दु होते हैं। उसी तरह कान में भी एक संवेदनात्मक केन्द्र है। नाक में दूसरा केन्द्र है। नाक में जो छेद किया जाता है वह फुली लगाने के लिये नहीं किया जाता, और कान में जो छेद किया जाता है कर्णफूल लगाने के लिये नहीं, बल्कि यौन नाड़ियों को नियंत्रित करने के लिये किया जाता है, क्योंकि मनुष्य के अन्दर सबसे बड़ी शक्ति, सबसे प्रबल शक्ति काम शक्ति है। उससे ज्यादा शक्तिशाली और कोई शक्ति नहीं है। हमलोगों के शास्त्रों में लिखा है कि यह काम शक्ति जीव मात्र में है और सबसे बड़ी शक्ति है।

कलियुग के देवता

कलौ चण्डीविनायकौ– कलियुग में दो देवता प्रमुख हैं, चण्डी और गणेश। चण्डी का मतलब होता है बढ़िया कपड़े, बढ़िया गहने, और अब तो औरतों का राज्य आने वाला है। घर वाली तो ये पहले से ही थीं, वह तो आप मर्दों ने उनको थोड़ा दबाकर रखा था, पर अब तो आपकी चुटिया इनके हाथ में आने वाली है। यह आगे का जमाना बोल रहा हूँ। दूसरी चीज है गणेश जी, बढ़िया कपड़े पहनो, खूब किताब पढ़ो, लाइब्रेरी में जाओ, उच्च शिक्षा लो। गणेश जी तो बहुत शिक्षित थे न? आज का मजदूर भी हो तो बी.ए., बी.एस.सी. पास हो। यह जो जमाना है वह फैशन का है। अच्छा खाना खाओ, अच्छा पढ़ो-लिखो, अच्छे घरों में रहो, अच्छी नौकरी होनी चाहिये, यही सब तो है, नहीं क्या? एक साधारण-से-साधारण मजदूर भी एक अच्छे स्तर के मुताबिक रहना चाहता है, पढ़ना-लिखना चाहता है।

ऐसी हालत में लोगों को क्या सिखाना है? कीर्तन और भजन। नृत्य और संगीत जरूरी हैं, क्योंकि संगीत आनेवाली शताब्दी की मुख्य संस्कृति है। इसलिये अपने बच्चों को संगीत सिखाओ। बचपन से रामायण सिखाओ, कबीर के पद सिखाओ, मीरा के भजन सिखाओ, आधुनिक संगीत, प्राचीन संगीत, सब सिखाओ! तुम देखोगे कि उनका अपना व्यक्तिगत जीवन बहुत अच्छा होगा। संगीत आदमी को कुछ बनाता है। जो लड़के-लड़कियाँ संगीत के मार्ग में जाते हैं उनके दर्शन, उनके आचार-विचार, उनके सिद्धान्त प्रभावित होते हैं। हर एक को चाहिये कि अपने बच्चों के लिये संगीत की अलग से व्यवस्था करे। अब जिनके बच्चे बड़े हो गये उनकी बात छोड़ दो, लेकिन जो छोटे बच्चे हैं, पाँच-छ: साल के, उनसे तो जरूर कहना चाहिए, 'बेटा, चार बजे उठो, हाथ-मुँह धो लो, गला साफ करो, सा...रे...गा... ।' इसी बहाने सुबह चार बजे तो उठेंगे।

–1 जनवरी 1998, रिखियापीठ

आसन से प्रत्याहार तक

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

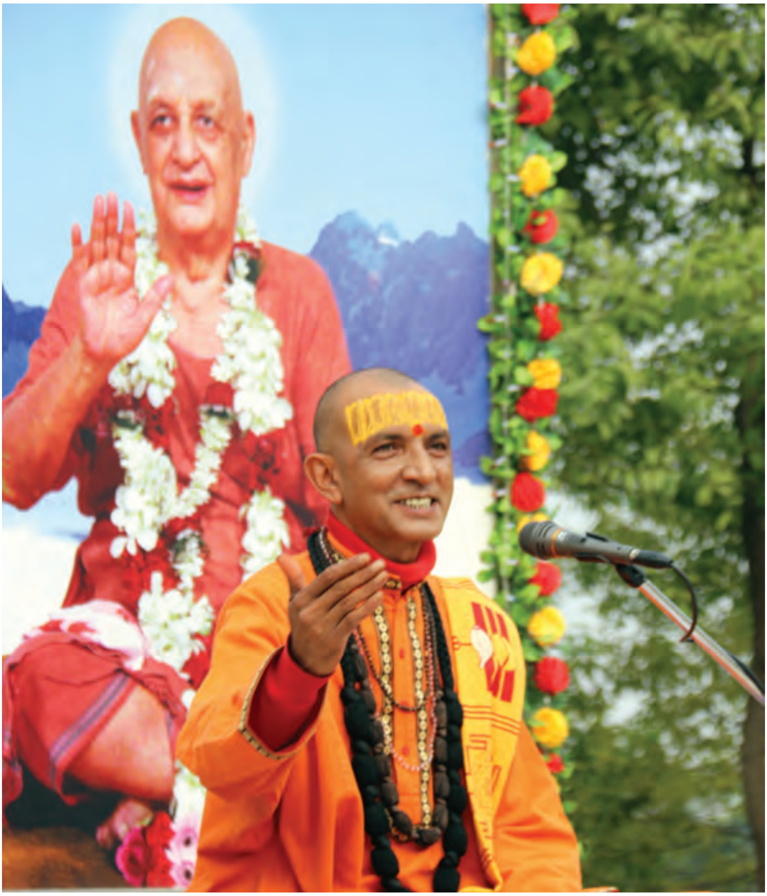

महर्षि पतंजलि योगसूत्रों में आसन के बारे में कहते हैं– *स्थिरसुखमासनम्।* इसका मतलब होता है कि आसन में स्थिरता और सुख का अनुभव करो, वही उसका प्रयोजन है। आसनों का प्रयोजन स्थिरता और सुख को प्राप्त करना है, किन्तु इसके लिये भी अलग-अलग अवस्थायें होती हैं। जब महर्षि पतंजलि पहले सूत्र में कहते हैं– *अथ योगानुशासनम्,* तो उसका अर्थ निकलता है कि अब योग के विषय में जानकारी लो। अथ शब्द संकेत देता है कि इसके पूर्व भी कोई शिक्षा व्यक्ति ने प्राप्त की है। यह संकेत है हठयोग की ओर। हठयोग में इन्द्रियों को शान्त करने

का प्रयास किया जाता है। हमारी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ तो सब चंचल हैं। जब तक इन्द्रियाँ चंचल है आदमी स्थिर नहीं बैठ सकता।

आप अपने आप को ही देख लो। ध्यान लगाते हो, मंत्र जप करते हो, क्या उस दौरान दो-चार मिनट भी आपका मन शान्त रहता है? दो मिनट भी हम स्थिर नहीं बैठ सकते हैं। यह इन्द्रियों की चंचलता को बतलाती है। दो मिनट जब स्थिर नहीं बैठ पाते हैं तो उसमें इन्द्रियों की चंचलता कैसे शान्त होगी और आदमी शान्ति चाहता है। पूछता है शान्ति को कैसे प्राप्त करें, लेकिन दो मिनट अपनी चंचलता को रोक नहीं सकता। इन्द्रियों की चंचलता जीवन को हमेशा अव्यवस्थित किये रहती है। स्थिरम् और सुखम् का मतलब ही होता है इन्द्रियों की चंचलता को शान्त करना। एक बार जब वह कम हो जाती है, तब फिर शारीरिक और मानसिक हलचल भी कम होते हैं।

यह मैं आपको अपने अनुभव से कहता हूँ, क्योंकि पंचाग्नि साधना करता हूँ जहाँ पर तापमान अभी 10-11 बजे तक 50 डिग्री से ऊपर चला जाता है। जैसे-जैसे गर्मी बढ़ेगी, उसका ताप और भी बढ़ेगा। उस समय हम देखते हैं कि अगर हमारा मन शान्त है, तो आग, लपट, चिंगारी, किसी का पता नहीं चलता है। चिंगारी लग रही है शरीर में, कुछ फर्क नहीं पड़ता है। ज्यादा-से-ज्यादा वहाँ क्षणभर के लिए हाथ चला जाता है। लपट लगती है हवा के झोंके से तो लगता है कोई गर्म चीज पीठ को स्पर्श कर रही है, लेकिन मन चंचल नहीं होता है। अनुभव होता है, लेकिन मन विचलित नहीं होता है। जब मन शान्त है तो अनुभव होगा, लेकिन विचलित नहीं होगा। जबकि अगर मन में कुछ विचार आते हैं तो जैसे ही लपट लगी, तुरंत तकलीफ होती है, शरीर जल रहा है। जब मन बदल जाता है, मन में विक्षेप आ जाते हैं, वहाँ पर इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, कुछ चंचलता है, उद्विग्नता है, उत्तेजना है, तब उस समय एक मिनट बैठना भी मुश्किल होता है। फिर बड़े जोर-जबरदस्ती के साथ सँभालना पड़ता है अपने आपको और वास्तव में वही तो ट्रेनिंग है। जहाँ देखा कि अब मन भागा, रोको इसको, ताकि आठ घंटे वहाँ पर बिना कुछ परेशानी के आराम से बैठ सको।

बात हो रही थी आसनों की और मैं इसको इन्द्रियों के साथ जोड़कर बतला रहा हूँ, क्योंकि आसनों का प्रयोजन केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि आसनों का प्रयोजन इन्द्रियों की चंचलता को कम करना भी होता है और उसी में भी फिर स्थिरम् एवं सुखम् का अनुभव होता है। आसन से जो स्थिरता और सुख की प्राप्ति होती है वह आपको प्रत्याहार की स्थिति तक ले जाती है।

प्रत्याहार क्या है? गीता में श्रीकृष्ण ने इसको बड़े सुंदर ढंग से समझाया है। वे अर्जुन से कहते हैं कि जैसे कछुआ अपने कवच के भीतर अंगों को समेटता है वैसे तुम भी अपनी इन्द्रियों को अपने आप में समेटो। उन्होंने कछुए का यह

जो दृष्टांत दिया वही प्रत्याहार है। कछुए के छः अंग होते हैं, दो हाथ, दो पैर, एक पूँछ और एक सिर। वह जब समेटता है तो सभी एक साथ कवच में आते हैं। इसी तरह हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं और छठी इन्द्रिय है मन। अब इनको समेटना है। हाथ, पैर, पूँछ को अन्दर करना तो सरल है। हम अपना कम्बल ओढ़कर चुपचाप बैठ जायेंगे, किसी को नहीं देखेंगे, कुछ करेंगे नहीं, लेकिन सिर अर्थात् मन को वापस करना बहुत कठिन है। अगर हम सिर को वापस कर लेंगे तब तो हो गया अपना बेड़ा पार! इसको कहते हैं प्रत्याहार जब हम अपनी सभी इन्द्रियों और साथ ही मन को भी प्रत्यावर्तित करें। यह प्रत्याहार का एक अर्थ हुआ, प्रति + आहार, जो भी आहार, जो भी अनुभव हम इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण कर रहे हैं उनको छोड़ देना।

योग शास्त्र में एक शब्द आता है प्रत्यय। प्रत्यय का मतलब होता है एक विषयवस्तु जिससे हमारा सम्बन्ध बनता है। हम आपको देख रहे हैं, एक सम्बन्ध बन रहा है। वह सम्बन्ध हमारे मन में एक प्रत्यय का निर्माण भी कर रहा है। वह प्रत्यय जो हमारे मन में हो रहा है, हमें बोध दे रहा है कि हम इस व्यक्ति को जानते हैं, समझते हैं। वह हमारा साथी है, सहयोगी है, मित्र है या दुश्मन है, वह प्रत्यय हमें पूरा ज्ञान दे देता है। प्रत्यय का मतलब किसी विषयवस्तु की छवि, और वह फिर हमारे साथ आजीवन रहती है। दस साल के बाद भी अगर हम उस व्यक्ति को याद करना चाहेंगे तो उसका चेहरा, उसका स्वभाव, उसका व्यक्तित्व सामने आ जायेगा। प्रत्यय विषयों से अपने सम्बन्ध को दर्शाता है और प्रत्याहार उस सम्बन्ध को काटने की स्थिति को कहते हैं–प्रत्यय का हरण, प्रत्यय से मुक्ति। यह प्रत्याहार का दूसरा अर्थ, दूसरा चरण हुआ।

प्रत्याहार के दूसरे चरण में विषयवस्तु से जो एक सम्बन्ध है, उसका द्रष्टा बनकर उसके सकारात्मक पक्ष को उजागर करना है और नकारात्मक पक्ष को समाप्त करना है। उदाहरण के लिए, गुलाब का फूल है। उसके आस-पास अनेकों काँटे हैं, लेकिन तुम देखते किसको हो? फूल को देखते हो। काँटे हजार हैं, लेकिन फूल के सौन्दर्य के कारण आप काँटों को भी अपने हाथ में पकड़ लेते हो। तुम्हें आकृष्ट किया है फूल के सौन्दर्य ने, उसके तने पर सैकड़ों काँटों ने नहीं, लेकिन उस सौन्दर्य के कारण आप उन काँटों को पकड़ने के लिये तैयार हैं। पकड़े हैं उसे जो चुभ रहा है, लेकिन सम्बन्ध है उस चीज से जो सुन्दर है और जो सुगंध दे रहा है। इसी तरह जीवन की अन्य परिस्थितियों में भी द्रष्टा बनकर सौन्दर्य से अपने आपको जोड़ना है, और जो सुन्दर नहीं है उसकी अवहेलना नहीं करनी, उसे पकड़ो, लेकिन उससे प्रभावित मत होना। प्रत्याहार एक अवस्था है मन की, जिसमें हम अपने आपको स्वयं के बन्धनों से मुक्त कर पाते हैं।

–6 मार्च 2016, गंगा दर्शन

देवत्व की ओर

मानव तेरी रीत यही, ईश्वर से धन प्रीत नहीं।
वासनाओं को अधिमान देता, मन बना घर शैतान जैसा॥
निज रचित इन्द्रिय-ओट में, बैठा तू प्रभु से दूर रहा।
सुख क्षणिक है यह जाना फिर भी, तू इन्द्रिय भोगों में लीन रहा॥
षड्रिपुओं को मीत समझकर, विषय-पंक निमग्न होता।
प्रभु सुमिरन से विमुख हो, रत भोग में, अमृत है खोता॥
जब विषय का विष दाह देती, तब करुण क्रन्दन करता है।
फिर भी मूढ़ बन भोग-ताल में, तू विवश नर्तन करता है॥
भोग-अतृप्ति का भुजंग जब, तेरे सम्मुख फन काढ़े खड़ा।
षड्मित्रों से छले जाने पर, तू घोर विषाद में पड़ा॥
किया तूने षड्रिपुओं को पोषित, देव अंतर के रहे उपेक्षित।
अब किस सुख की तलाश है, और किस अनुग्रह की आस है॥
तू ही सोच है क्या अभिलाषा, विषय-रस या सत्व-सुधा का प्यासा।
अब भी जा सम्हल, अभी पूरी अंधेर नहीं
अग्नि अभी बुझा नहीं, तम घनेर सही॥
तू भी सोचेगा, भला पावक दीप्त कहीं वर्तमान?
तेरे हृदय का यह विषाद, वही तो अनल-कण वर्धमान॥
जलने दे और कुछ हवा दे, इस छोटी सी चिंगारी को।
न खा भय अब, मन-प्रास सह ले, सुमिर ले हलाहल धारी को॥

जिसने हलाहल पान किया, वही देव महान् हुआ।
भव-ताप अचल सहने वाला, इस जगत् का भगवान हुआ॥
सच, त्रास नहीं है यह अग्नि, पर पूर्ण-तप्त स्पर्श है।
मानव का अपने अंतर तम से, यह प्रथम संघर्ष है॥
चलने दे यह संघर्ष, कि जब तक तेरी जीत न हो।
बढ़ने दे इस बड़वानल को, हिय-कुंड अग्नि से रीत न हो॥
यह महायज्ञ की ही अग्नि, तुझमें प्रकाश फैलाएगा।
इस विषाद-यज्ञ की ही अग्नि से, पथ नवीन तू पाएगा॥
तेरे शत्रु जल रहे हैं, देवता सज-धज रहे हैं।
सद्गुण ही तो देवता हैं, जो तुझमें अब जग रहे हैं॥
हैं तो सद्गुण बहुत पर, तू एक ही से प्रीत कर ले।
बांध देवता को कस कर, मन में कहीं न ढील कर ले॥
ये देवता रहते सदा, देवताओं की ही संगत में।
यदि एक भी पूजित हुआ, तो सब आएँगे पंगत में॥
अब युगों-युगों का अंधियारा, लख आलोक मरता जा रहा।
और सद्गुण-देवों के सम्मुख, असुर ठहर न पा रहा॥
भीतर दिव्यता से पूरित, प्रकाश छाता जा रहा।
ज्योतिर्मय, अंतश्चेतना में, उद्भासित हो गा रहा....
जब हृदय में सत्त्व भरता, तब मनुज देवतत्त्व बनता।
सत्कर्मों से निर्मल होकर ही, आत्मा का अमरत्व जगता॥
वह गुरु ही तो है, सदा ही दिव्यपुंज प्रकाशमान।
अंतर के पथ दिखलाए, और असुर से किए जो सावधान॥
नर, असुर-तत्त्व को नष्ट कर, देवत्व प्रखरतर आता है।
है त्रिगुणातीत गुरु जिनको, गुण में देवत्व ही भाता है॥
शील, तपस्या और भक्ति से, मंडप सुघर सजाओ हे!
मिलन की बेला आ गयी है, प्रेम के वाद्य बजाओ हे!
गुरुदेव आएँगे तत्क्षण, प्रेम-मेघ बरसाने को।
देवतत्त्व के उर-पंकज में, निज आसन विराजने को॥

—संन्यासी देवतत्त्व, गंगा दर्शन

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

***योगा* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

***योगविद्या* पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–**
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें–https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें–https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

• Registered with the Department of Post, India
Under No. MGR-01/2017
Office of posting: Ganga Darshan TSO
Date of posting: 1st-7th of every month
• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

अगस्त 6-11	क्रिया योग यात्रा 1
	क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि
अगस्त 20-25	क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2
सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।